केसर-क्यारी

(हिन्दी की आदर्श कहानियों का संग्रह)

सम्पादक

प्रो० सन्त सिंह सेखों

खालसा कालेज, अमृतसर

प्रकाशक-

लाहौर बुक शाप, घण्टा घर, लुधियाना ।

प्रथमावृत्ति मूल्य २॥)

केसर-क्यारी

(हिन्दी की आदर्श कहानियों का संग्रह)

सम्पादक

प्रो० सन्त सिंह सेखों

खालसा कालेज, अमृतसर

प्रकाशक-

लाहौर बुक शाप, घण्टा घर, लुधियाना।

प्रथमावृत्ति मूल्य २।)

सूची

भूमिका

हिन्दी साहित्य का उद्यान बड़ा विशाल है। दूर २ तक इस में तरह २ की क्यारियां हैं, कोई कविता की, कोई नाटकों की कोई गद्य काव्यों की और कोई गद्य की। कविता की अपेक्षा गद्य की क्यारी के पौधे अभी छोटे हैं, परन्तु यह क्यारी है बड़ी विस्तृत। इस गद्य की क्यारी में भी सब से अधिक जगह घेर रखी है आधुनिक कहानियों की क्यारी ने; केसर की भान्ति देखने में बड़ी सुन्दर, सूंघने में सुगन्धित और वैसे भी बड़ी लाभ-प्रद। इस केसर क्यारी को हिन्दी के महान् कलाकारों ने सींचा है और यह दिन प्रति दिन उत्तरोत्तर पनप रही है, बढ़ रही है। इस केसर क्यारी में से ग्यारह सुन्दर और सुगन्धित फूल चुनकर, साथ में एक फूल अपना मिलाकर मैंने बारह रंग-बिरंगे फूलों का एक गुलदस्ता तय्यार किया है जो मैं अपने पाठकों की भेंट करता हूँ। इस में पांच फूल स्वर्गीय महान् कलाकारों के हैं, तीन वर्तमान देवियों के, तीन आधुनिक प्रसिद्ध लेखकों के। सब की भाषा और शैली अलग २ है। इस प्रकार पाठक को इस में अलग २ रसों का स्वाद मिलेगा। हां, इस बात का मैंने विशेष ध्यान रखा है कि इस में कहीं अश्लीलता न आने पाये।

छात्रों के हित के लिए प्रथम कहानी के अन्त में मौडल प्रश्न दिए गए हैं, ऐसे ही प्रश्न उन्हें दूसरी कहानियों के भी तय्यार कर लेने चाहिएं। इन से विद्यार्थियों का विशेष हित होगा।

तिथि १०-८-४६

सन्त सिंह सेखों
खालसा कालेज, अमृतसर।

लेखकों का परिचय

स्वर्गीय पं० विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक

इन का जन्म १८६० में अंबाला छावनी (पंजाब) में हुआ था, परन्तु यह छोटी आयु में ही कानपुर चले गए और फिर वहीं के हो गए। यह धनाढ्य व्यक्ति थे। इन का लिखने का उद्देश्य केवल साहित्य सेवा था। इनहों ने कुछ नाटक और हास्य-रस की चीज़ें भी लिखी हैं परन्तु कहानी लिखने में यह बहुत प्रवीण थे। चाय का प्याला पीते २ यह कहानी लिख सकते थे। इन की कहानियों में वार्तालाप बहुत होता है। इस से कहानियों में जीवन आ जाता है और पात्रों का चरित्र चित्रण अच्छा हो जाता है। इन की कहानियों में पारिवारिक जीवन और सामाजिक कुरीतियों का वर्णन बहुत रहता है। हिन्दी जगत् के दुर्भाग्य से आपका सन् १६४५ दिसम्बर मास में देहान्त हो गया।

स्वर्गीय श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेर के निवासी थे, इसलिए उन को गुलेरी कहते हैं। 'उसने कहा था', नामक उनकी केवल एक ही कहानी मिलती है, परन्तु कला की दृष्टि से यह इतनी सुन्दर बन पड़ी है कि इसे संसार की उत्कृष्ट कहानियों में गिना जा सकता है। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि यदि उनका ३८ वर्ष की अल्पायु में देहान्त न हो गया होता तो वह हिन्दी जगत् को कैसे २ सुन्दर रत्न देकर निहाल करते।

स्वर्गीय श्री जयशंकर प्रसाद

श्री जयशंकर प्रसाद जी की प्रतिभा सर्वतो-मुखी थी। इन्हों ने हिन्दी जगत् को काव्य दिए, नाटक दिए, निबन्ध दिए और दीं उपन्यास-कहानियां। यह भावुक कवि हैं। प्राचीन भारत के गौरव को दिखाना इन का मनभाता विषय है। इन की कहानियों में दार्शनिकता बहुत होती है और भावों की अधिकता। यह सफल नाटक-कार भी हैं, अतः इनकी कहानियों में भी कथनोपकथन बहुत सुन्दर होता है। आरंभ से अन्त तक पाठक की रुचि को बनाये रखने में यह बहुत प्रवीण थे। इन की भाषा अधिकतर संस्कृत-मयी होती है, और इनका भाषा पर पूरा अधिकार है।

स्वर्गीय श्री प्रेमचन्द जी

इनका जन्म सन् १८८० में मढ़वा ग्राम ज़िला बनारस में हुआ था। इन का विद्यार्थी जीवन बड़ी कठिनाइयों में व्यतीत हुआ। और कोई विद्यार्थी होता तो शायद हिम्मत हार बैठता। इनको उर्दू के उपन्यास-कहानियां पढ़ने का बड़ा शौक था। पहले पहल इन्होंने लिखना भी उर्दू में आरंभ किया, परन्तु शीघ्र ही हिन्दी में लिखने लग गए। हिन्दी संसार ने इन का खूब आदर किया और यह हिन्दी के ही हो गए। इन्हों ने कई एक उपन्यास लिखे हैं जो कि बहुत ही ऊंची श्रेणी के हैं, इसलिए इन को उपन्यास-सम्राट् कहते हैं। इन के आने से आधुनिक कहानी-युग में नये युग का आरंभ हो गया है। इन की कहानियाँ सामाजिक और पारिवारिक जीवन से संबन्ध रखती हैं। उन का उद्देश्य

मज़दूरों, किसानों और दलितों की वर्तमान समस्याओं को सुलझाना और जनता के अन्दर सत्य और अहिंसा की भावनाओं को पुष्ट करना था।

ये भारतीय सभ्यता के परम भक्त थे। ग्राम्य जीवन इन को बहुत पसंद था। इन्हों ने ४०० से अधिक कहानियाँ लिखी हैं जो कि कई एक कहानी-संग्रहों में प्रकाशित हो चुकी हैं। कई एक मासिक पत्रिकाओं का इन्होंने सम्पादन भी किया। इन की भाषा सरल, स्वाभाविक और मुहावरेदार होती हैं। इनकी कहानियों को सब से अधिक पसंद किया जाता है। १९३६ में इन का स्वर्गवास हो गया।

श्रीमती कमला त्रिवेणी शंकर

श्रीमती कमला काशी के प्रसिद्ध ऐडवोकेट श्री त्रिवेणीशंकर की पत्नी हैं। इनका जन्म ज्ञानपुर ज़िला बनारस के एक प्रतिष्ठित कायस्थ परिवार में हुआ था। अब तक इन की दो सौ से अधिक कहानियाँ निकल चुकी हैं। आप की गणना कहानियों की श्रेष्ठ लेखिकाओं में होती है।

मध्यम वर्ग की जनता के अभावों का मनोवैज्ञानिक विशेषण करने में आप बड़ी निपुण हैं। नारी जीवन का चित्रण आप बहुत सुन्दर करती हैं। इनको अपने कथानकों के लिए कहीं दूर नहीं जाना पड़ता। आस पास के वातावरण से ही इनको अपनी कहानी के लिये सुन्दर कथानक मिल जाता है। 'पुकार' नाम से इन की कहानियों का एक संग्रह भी प्रकाशित हो चुका है। इनकी भाषा सरल, स्वाभाविक और मार्मिक होती है।

श्री राय कृष्णदास

श्री रायकृष्णदास का जन्म सन् १८९२ में हुआ था। इन का निवास-स्थान 'काशी' है। इन की पहली कहानी १९१० में छपी थी। इनकी कहानियों के तीन संग्रह निकल चुके हैं, १. अनाख्या, २. सुधाँशु, ३. आंखों की थाह, इन की कहानियाँ भावपूर्ण होती हैं, इन में दार्शनिकता बहुत पाई जाती है। श्री जयशङ्कर प्रसाद की भान्ति इन की भाषा संस्कृतमयी है, परन्तु उस में कहीं २ प्रान्तीयता की पुठ आ जाती है। भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार है। कहानियों के अतिरिक्त इन्होंने गद्य-काव्य भी अच्छे लिखे हैं। इनकी पहली कृति 'साधना' ने ही हिन्दी जगत् को मुग्ध कर दिया था। 'प्रवाल', और 'गद्य-काव्य' इन के गद्य-काव्यों की प्रसिद्ध पुस्तकें हैं।

श्री कृष्णानन्द गुप्त

इनका जन्म सन् १९०४ में हुआ था। इन का निवास-स्थान झांसी है। इन की कहानियों का एक संग्रह 'पुरस्कार' नाम से निकल चुका है। इनकी कहानियां पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः निकलती रहती हैं। आप अच्छे आलोचक और सफल सम्पादक है। टीकमगढ़ (c. i.) से आप त्रैमासिक पत्रिका 'लोकवार्ता' निकालते हैं। 'प्रसाद के दो नाटक', 'जलकण', 'केन' आदि आप की अन्य प्रसिद्ध रचनायें हैं।

श्रीमती कमला देवी चौधरी

श्रीमती कमला देवी चौधरी मेरठ (यू. पी.) की रहने वाली हैं। इन की आयु लगभग ३० वर्ष की है। स्त्री लेखिकाओं में इन का स्थान काफी ऊंचा है। इन को कहानियों के दो संग्रह उन्माद और पिकनिक नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। नारी-हृदय का विश्लेषण ये बड़ी निपुणता से करती हैं। स्त्रियों की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों के चित्रण में ये सिद्ध-हस्त हैं।

कुमारी सरला देवी

इन की कहानियाँ प्रायः पत्र पत्रिकाओं में निकलती रहती हैं। अपनी निरन्तर साधना के द्वारा इन्होंने उदीयमान कहानी लेखिकाओं में अच्छी ख्याति प्राप्त करली है। इन के कथानक अधिकतर सामयिक समस्याओं से लिए जाते हैं। पारिवारिक जीवन का चित्रण तथा सामाजिक कुरीतियों का वर्णन इन का मन भाता विषय है। इनकी भाषा सरल और स्वाभाविक होती है।

श्री वृन्दावनलाल वर्मा

श्रीवृंदावनलाल वर्मा का जन्म सन् १८६७ में हुआ था। यह झांसी के प्रसिद्ध ऐडोवोकेट हैं, तो भी साहित्य सेवा के लिए काफी समय निकाल लेते हैं। इन के कई एक प्रसिद्ध उपन्यास निकल चुके हैं, जैसे कोतवाल की करामात, गढ़-कुंडार, कुंडली-चक्र और प्रेम की भेंट। मुंशी प्रेमचन्द के बाद इन को हिन्दी का

सर्व-श्रेष्ठ उपन्यासकार माना जाता है। इन की कहानियों के विषय प्रायः आस पास के वातावरण से लिए जाते हैं। इन की कहानी की सफलता इन के कहने के ढङ्ग में इन की शैली में हैं जो कि अपने ढङ्ग की अनूठी और मौलिक है। इन की भाषा शुद्ध तथा परिमार्जित है। यह छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी कहानी लिख सकते हैं। शब्द चित्र भी यह बड़े सुन्दर लिखते हैं। 'झकोला चारपाई' इन की एक छोटी कहानी है और नवीनतम रचना है।

❀

केसर क्यारी

दो हैं

स्वर्गीय पं० विश्वम्भर नाथ "कौशिक"

[१]

'मान जाओ, तुम्हारे उपयुक्त यह कार्य न होगा।'

'चुप रहो—तुम क्या जानो।'

'इसमें वीरता नहीं है, अन्याय है।'

'बहुत दिनों की धधकती हुई ज्वाला शान्त होगी।' शक्तिसिंह ने एक लम्बी साँस फेंकते हुए, अपनी स्त्री की ओर देखा।

'..............................'

'..............................'

'कलंक लगेगा, अपराध होगा।'

'अपमान का बदला लूंगा। प्रताप के गर्व को मिट्टी में मिला दूंगा। आज मैं विजयी होऊंगा'। बड़ी दृढ़ता से कहकर शक्तिसिंह ने शिविर के द्वार पर से देखा। मुग़ल-सेना के चतुर सिपाही अपने अपने घोड़ों की परीक्षा ले रहे थे। धूल उड़ रही थी। बड़े साहस से सब एक दूसरे में उत्साह भर रहे थे।

'निश्चय महाराणा की हार होगी। बाईस हज़ार राजपूतों को दिन भर में मुग़ल-सेना काट कर सूखे डण्ठल की भाँति गिरा देगी।' साहस से शक्तिसिंह ने कहा।

'भाई पर क्रोध करके देश-द्रोही बनोगे...' कहते-कहते उस राजपूत-बाला की आँखों से चिनगारियां निकलने लगीं।

शक्तिसिंह अपराधी की नाईं विचार करने लगा। जलन का उन्माद उस की नस-नस में दौड़ रहा था। प्रताप का प्राण लेकर ही छोड़ेगा, ऐसी प्रतिज्ञा थी। नादान दिल किसी तरह न न मानेगा। उसे कौन समझा सकता था।?

रण-भेरी बजी।

कोलाहल मचा। मुग़ल-सैनिक मैदान में एकत्रित होने लगे। पत्ता-पत्ता खड़खड़ा उठा।

बिजली की भांति तलवारें चमक रही थीं। उस दिन सब में उत्साह था। युद्ध के लिए भुजायें फड़कने लगीं।

शक्तिसिंह ने घोड़े की लगाम पकड़ कर कहा—आज अन्तिम निर्णय है, मरूंगा या मारकर ही लौटूंगा?

शिविर के द्वार पर खड़ी मोहिनी अपने भविष्य की कल्पना कर रही थी। उसने बड़ी गम्भीरता से कहा—'ईश्वर सद्बुद्धि दे, यही प्रार्थना है।'

[२]

एक महत्त्वपूर्ण अभिमान के विध्वंस करने की तैयारी थी। प्रकृति कांप उठी। घोड़ों और हाथियों के चीत्कार से आकाश थरथरा उठा। बरसाती हवा के थपेड़ों से जङ्गल के वृक्ष रण-नाद

करते हुए झूम रहे थे। पशु-पक्षी भय त्रस्त होकर आश्रय ढूंढ़ने लगे। बड़ा विकट समय था।

उस भयानक मैदान में राजपूत-सेना मोरचाबन्दी कर रही थी। हल्दीघाटी की ऊंची चोटियों पर भील लोग धनुष चढ़ाये उन्मत्त के समान खड़े थे।

'महाराणा की जय!' शैलमाला से टकराती हुई ध्वनि मुगल-सेनाओं में घुस पड़ी। युद्ध आरम्भ हुआ। भैरवी रणचण्डी ने प्रलय का राग छेड़ा। मनुष्य हिंस्र जन्तुओं की भाँति अपने अपने लक्ष्य पर टूट पड़े। सैनिकों के निडर घोड़े हवा में उड़ने लगे। तलवारें बजने लगीं। पर्वतों के शिखरों पर से विषैले बाण मुगल-सेना पर बरसने लगे। सूखी हल्दीघाटी में रक्त की धार बहने लगी।

महाराणा आगे बढ़े। शत्रु-सेना का व्यूह टूट कर तितर-बितर हो गया। दोनों ओर के सैनिक कट कटकर गिरने लगे।

देखते देखते लाशों के ढेर लग गये।

भूरे बादलों को लेकर आंधी आई। सलीम के सैनिकों को बचने का अवकाश मिला। मुगलों की सेना में नया उत्साह भर गया। तोप के गोले उथल-पुथल करने लगे। धांय-धांय करती बन्दूक से निकली हुई गोलियां दौड़ रही थीं—ओह? जीवन कितना सस्ता हो गया था?

महाराणा शत्रु-सेना में सिंह की भाँति उन्मत्त होकर घूम रहे थे। जान की बाजी लगी थी। सब तरफ से घिरे थे। हमले

पर हमला हो रहा था। प्राण संकट में पड़े थे। बचना कठिन था। सात बार घायल होने पर भी पैर उखड़े नहीं, मेवाड़ का सौभाग्य इतना दुर्बल नहीं था।

मानसिंह की कुमन्त्रणा सिद्ध होने वाली थी। ऐसे आपत्ति काल में वह वीर सरदार सेना-सहित वहाँ कैसे आया? आश्चर्य से महाराणा ने उसकी ओर देखा—वीर मन्नाजी ने उनके मस्तक से मेवाड़ के राज चिन्हों को उतार कर स्वयं धारण कर लिया। राणा ने आश्चर्य और क्रोध से पूछा—'यह क्या?' 'आज मरनेके समय एक बार राज-चिन्ह धारण करने की बड़ी इच्छा हुई है।'—हँसकर मन्नाजी ने कहा। राणा ने उस उन्माद-पूर्ण हँसी में अटल धैर्य देखा।

मुगलों की सेना में से शक्तिसिंह इस चातुरी को समझ गया। उसने देखा, घायल प्रताप रण-क्षेत्र से जीते-जागते निकले चले जा रहे हैं। और वीर मन्नाजी को प्रताप समझ कर मुगल उधर ही टूट पड़े हैं।

उसी समय दो मुगल-सरदारों के साथ महाराणा के पीछे-पीछे शक्तिसिंह ने अपना घोड़ा छोड़ दिया।

[३]

खेल समाप्त हो रहा था। स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर सन्नाटा छा गया था। जन्मभूमि के चरणों पर मर मिटने वाले वीरों ने अपने को उत्सर्ग कर दिया था। बाइस हज़ार राजपूत वीरों में से केवल आठ हज़ार बच गये थे।

विद्रोही शक्तिसिंह चुपचाप सोचता हुआ अपने घोड़े पर चढ़ा चला जा रहा था। मार्ग में शव कटे पड़े थे—कहीं भुजाएं शरीर से अलग पड़ी थीं, कहीं धड़ कटा हुआ था, कहीं खून से लथपथ मस्तक भूमि पर गिरा हुआ था। कैसा परिवर्तन है! दो घड़ियों में हँसते बोलते और लड़ते हुए जीवित पुतले कहाँ चले गये? ऐसे निरीह जीवन पर इतना गर्व!

शक्तिसिंह की आंखें ग्लानि से छलछला पड़ीं—

ये सब भी राजपूत थे। मेरी ही जाति के खून थे! हाय रे मन! तेरा प्रतिशोध पूरा हुआ? नहीं, यह प्रतिशोध नहीं था, अधम शक्त! यह तेरे चिर-कलंक के लिए पैशाचिक आयोजन था। तू भूला, पागल! तू प्रताप से बदला लेना चाहता था—उस प्रताप से जो अपनी 'स्वर्गादपि गरीयसी' जननी जन्म-भूमि की मर्यादा बचाने चला था? वह जन्मभूमि जिसके अन्न-जल से तेरी नस भी फूली-फली है। अब भी माँ की मर्यादा का ध्यान कर।"

सहसा धांय-धांय गोलियों का शब्द हुआ। चौंककर शक्तिसिंह ने देखा—दोनों मुगल-सरदार प्रताप का पीछा कर रहे थे। महाराणा का घोड़ा अस्त-व्यस्त होकर झूमता हुआ गिर रहा है। अब भी समय है। शक्तिसिंह के हृदय में भाई की ममता उमड़ पड़ी।

एक आवाज़ हुई—रुको!

दूसरे क्षण शक्तिसिंह की बन्दूक छूटी, पलक मारते दोनों मुगल-सरदार जहाँ-के तहां ढेर हो गये। महाराणा ने क्रोध से आँख चढ़ाकर देखा, वे आँखें पूछ रही थीं—क्या मेरे प्राण पाकर

निहाल हो जाओगे ? इतने राजपूतों के खून से तुम्हारी हिंसातृप्ति नहीं हुई ?

किन्तु यह क्या ? शक्तिसिंह तो महाराणा के सामने नतमस्तक खड़ा था। वह बच्चों की तरह फूट-फूटकर रो रहा था। शक्तिसिंह ने कहा—'नाथ ? सेवक अज्ञान में भूल गया था, आज्ञा हो, तो इन चरणों पर अपना शीश चढ़ाकर पद-प्रक्षालन करलूं, प्रायश्चित्त करलूं।'

राणा ने अपनी दोनों बाहें फैला दीं। दोनों के गले आपस में मिल गये, दोनों की आँखें स्नेह की वर्षा करने लगीं, दोनों के हृदय गद्‌गद् हो गये।

इस शुभ मुहूर्त पर पहाड़ी वृक्षों ने पुष्प वर्षा की, नदी की कल कल धाराओं ने वन्दना की।

प्रताप ने उन डबडबाई हुई आँखों से ही देखा—उनका चिर-सहचर प्यारा 'चेतक' दम तोड़ रहा है। सामने ही शक्तिसिंह का घोड़ा खड़ा था।

शक्तिसिंह ने कहा—'भैया अब आप विलम्ब न करें, घोड़ा तैयार है।'

राणा शक्तिसिंह के घोड़े पर सवार होकर उस दुर्गम मार्ग को पार करते हुए निकल गये।

—:o:—

[२]

उसने कहा था

स्व० श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

[१]

बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़ीवालों की ज़बान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गये हैं उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बम्बूकार्ट वालों की बोली का मरहम लगावें। जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्के वाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की अंगुलियों के पोरों को चीथ कर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं, और संसार भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले, तङ्ग चक्कर-दार गलियों में हर एक गड्डीवाले के लिए ठहरकर सब्र का समुद्र उमड़ाकर 'बचो ख़ालसा जी', 'हटो भाई जी', 'ठहरना भाई', 'आने दो लालाजी', 'हटो बाबा', कहते हुए गेटों, खच्चरों और बतकों, गन्ने खोमचे और भाड़ेवालों के जङ्गल में से राह खेते

हैं। क्या मजाल है कि 'जी' और 'साहब' बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उसकी जीभ चलती ही नहीं; चलती है, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती है। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चेतावनी देने पर भी लीक से नहीं हटती तो उनकी वचनावली के ये नमूने हैं—हट जा जीणे जोगिए; हट जा करमा वालिए; हट जा, पुत्ताँ प्यारिए; बच जा, लम्बी वालिए। समष्टि में इसका अर्थ है कि तू जीने योग्य है, तू भाग्योंवाली है, पुत्रों को प्यारी है, लम्बी उम्र तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहियों के नीचे आना चाहती है ?—बच जा।

ऐसे बम्बूकार्ट वालों के बीच में होकर एक लड़का और लड़की चौक की एक दुकान पर आ मिले। उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिख हैं। यह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था और यह रसोई के लिए बड़ियाँ। दुकानदार एक परदेशी से गुथ रहा था, जो सेर भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता न था।

"तेरे घर कहाँ हैं ?"

"मगरे में; और तेरे ?"

"माझे में;—यहाँ कहाँ रहती है ?"

"अतरसिंह की बैठक में, वे मेरे मामा होते हैं।"

"मैं भी मामा के आया हूँ, उनका घर गुरुबाज़ार में है।"

इतने में दुकानदार निबटा और इनका सौदा लेने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ साथ चले। कुछ दूर जाकर लड़के ने

मुसकराकर पूछा—'तेरी कुड़माई[1] हो गई ?" इस पर लड़की ने कुछ आंखें चढ़ा कर 'धत्' कह कर दौड़ गई और लड़का मुंह देखता रह गया।

दूसरे तीसरे दिन सब्ज़ी वाले के यहाँ, या दूध वाले के यहां, अकस्मात् दोनों मिल जाते। महीना भर यही हाल रहा। दो-तीन बार लड़के ने फिर पूछा—"तेरी कुड़माई हो गई ?" और उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हंसी में चिढ़ाने के लिए पूछा तो लड़के की सम्भावना के विरुद्ध, बोली—हां, हो गई।"

"कब ?"

"कल;—देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू[2]।' लड़की भाग गई। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छाबड़ीवाले[3] की दिन-भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभी वाले के ठेले में दूध उड़ेल दिया। सामने नहाकर आती हुई किसी वैष्णवी से टकराकर अन्धे की उपाधि पाई। तब कहीं घर पहुंचा।

(२)

"राम राम, यह भी कोई लड़ाई है ? दिन-रात खन्दकों में बैठ हड्डियाँ अकड़ गईं। लुधियाने से दस गुना जाड़ा और मेंह और बरफ ऊपर से। पिंडलियां तक कीच में धंसे हुए हैं। गनीम कहीं दिखता नहीं;—घंटे दो घंटे में कान के परदे फाड़ने वाले

१—सगाई, २—ओढ़नी, ३—खोमचे वाला।

धमाके के साथ सारी खन्दक हिल जाती है और सौ-सौ गज़ धरती उछल पड़ती है। इस गैबी गोले से बचे तो कोई लड़े। नगर कोट का ज़लज़ला सुना था, यहां दिन में पचीस ज़लज़ले होते हैं। जो कहीं खन्दक से बाहर साफा या कुहनी निकल गई, तो चटाक् से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लेटे हुए हैं या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।"

"लहनासिंह, और तीन दिन हैं। चार तो खन्दक में बिता ही दिए। परसों 'रिलीफ' आ जायगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों झटका करेंगे और पेट भर खाकर सो रहेंगे। उसी फरंगी मेम के बाग में—मखमल की-सी हरी घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती। कहती हैं, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आये हो।"

"चार दिन तक पलक नहीं झंपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाय। फिर सात जरमनों को अकेला मारकर न लौटूं तो मुझे दरबार साहब की देहलीज पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कहीं के, कलों के घोड़े—संगीन देखते ही मुंह फाड़ देते हैं और पैर पकड़ने लगते हैं। यों अंधेरे में तीस-तीस मन का फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था—चार मील तक एक जर्मन नहीं छोड़ा था।

पीछे जनरल साहब ने 'हट आने' का कमान दिया, नहीं तो—"

"नहीं तो सीधे बर्लिन पहुंच जाते। क्यों" सूबेदार हज़ारा सिंह ने मुसकराकर कहा—"लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाए नहीं चलते। बड़े अफसर दूर की सोंचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ बढ़ गए तो क्या होगा।"

"सूबेदार जी, सच है" लहनासिंह बोला—"पर करें क्या! हड्डियों में तो जाड़ा धंस गया है। सूर्य निकलता नहीं, और खाई में दोनों तरफ से चम्बे की बावलियों के से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाय तो गरमी आ जाय।"

"उदमी उठ, सिगड़ी में कोले डाल। वज़ीरा, तुम चार जने बालटियां लेकर खाई का पानी बाहर फेंको। महासिंह, शाम हो गई है, खाई के दरवाज़े का पहरा बदला दे।" यह कहते हुए सूबेदार सारी खन्दक में चक्कर लगाने लगे। वज़ीरासिंह पल्टन का विदूषक था। बाल्टी में गंदला पानी भरकर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला—"मैं पाधा बन गया हूं। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण! इस पर सब खिलखिला पड़े और उदासी के बादल फट गए।

लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भरकर उसके हाथ में देकर कहा—"अपनी बाड़ी के खरबूज़ों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब भर में नहीं मिलेगा।"

"हां देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस घुमा ज़मीन यहाँ मांग लूंगा और फलों के बूटे लगाऊंगा।"

'लाड़ी[1] होराँ को भी यहां बुला लोगे ! या वही दूध पिलाने वाली फरंगी मेम—"

"चुप कर। यहाँ वालों को शरम नहीं।"

"देस-देस की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तमाकू नहीं पीते। वह सिगरेट देने में हठ करती है, ओठों में लगाना चाहती है, और—मैं पीछे हटता हूँ तो समझती है कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुलक के लिए लड़ेगा नहीं।"

"अच्छा, अब बोधासिंह कैसा है ?"

"अच्छा है।"

जैसे मैं जानता ही न होऊं। रात भर तुम अपने दोनों कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न माँदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है मौत है और "निमोनिया" से मरने वालों को मुरब्बे[2] नहीं मिला करते।"

"मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूंगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाए हुए आंगन के आम के पेड़ की छाया होगी।"

बज़ीरासिंह ने त्यौरी चढ़ा कर कहा—' क्या मरने—मराने की बात लगाई है ? मरे जर्मनी और तुरक !"

हां भाइयो, कुछ गाओ।

१—स्त्री का आदरवाचक शब्द, २—नई नहरों के पास वर्ग-भूमि।

कौन जानता था कि दाढ़ियों वाले घरबारी सिख ऐसा लुच्चों का गीत गाएंगे, पर सारी खन्दक गीत से गूंज उठी और सिपाही फिर ताजे हो गए, मानों चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हों।

(३)

दो पहर रात गई है। अंधेरा है। सन्नाटा छाया हुआ है। बोधासिंह खाली बिसकुटों के तीन टिनों पर अपने दोनों कम्बल बिछाकर और लहनासिंह के दो कम्बल और दो बरानकोट ओढ़ कर सो रहा है। लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आंख खाई के मुंह पर है और एक बोधासिंह के दुबले शरीर पर। बोधासिंह कराहा।

"क्यों बोधा भाई, क्या है ?"

"पानी पिलादो।"

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुंह से लगाकर पूछा—"कहो कैसे हो ?" पानी पीकर बोधा बोला—कंपनी छूट रही है। रोम-रोम में तार दौड़ रहे हैं। दाँत बज रहे हैं।"

"अच्छा मेरी जरसी पहन लो !"

"और तुम ?"

"मेरे पास सिगड़ी है मुझे गर्मी लगती है; पसीना आ रहा है।"

"न, मैं नहीं पहनता; चार दिन से तुम मेरे लिए—"

"हाँ, याद आई। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सवेरे ही आई है। विलायत से मेमें बुन-बुनकर भेज रही हैं। गुरु

उनका भला करें।" यों कहकर लहना अपना कोट उतारकर जरसी उतारने लगा।

"सच कहते हो?"

"और नहीं झूठ?" यों कह कर नाहीं करते बोधा को उसने ज़बरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और जान का कुरता भर पहन कर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घण्टा बीता। इतने में खाई के मुंह से आवाज़ आई —"सूबेदार हज़ारासिंह।"

"कौन? लपटन साहब? "हुकुम हजूर" कहकर सूबेदार तनकर फ़ौजी सलाम करके सामने हुआ।

"देखो इसी दम धावा करना होगा। मील भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें पचास से जियादह जर्मन नहीं हैं। इन पेड़ों के नीचे-नीचे दो खेत काट कर रास्ता है। तीन-चार घुमाव है। जहाँ मोड़ है वहाँ पन्द्रह जवान खड़े कर आया हूँ। तुम यहाँ दस आदमी छोड़कर सब को साथ ले उनसे जा मिलो। खन्दक छीन कर वहीं, जब तक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहां रहेगा।"

"जो हुक्म।"

चुपचाप सब तैयार हो गए। बोधा भी कम्बल उतारकर चलने लगा। तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ तो बोधा के बाप सूबेदार ने उंगली से बोधा की ओर इशारा

किया। लहनासिंह समझकर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहें, इस पर बड़ी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा-बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुंह फेरकर खड़े हो गए और जेब से सिगरेट निकाल कर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ाकर कहा—

"लो तुम भी पियो।"

आंख मारते-मारते लहनासिंह सब समझ गया। मुंह का भाव छिपाकर बोला—"लाओ, साहब।" हाथ आगे करते ही सिगड़ी के उजाले में साहब का मुंह देखा। बाल देखे। तब उसका माथा ठनका लपटन साहब के पट्टियों वाले बाल एक दिन में कहां उड़ गए और उनकी जगह कैदियों के से कटे हुए बाल कहां से आ गए?

शायद साहब शराब पिये हुए हैं और उन्हें बाल कटवाने का मौका मिल गया है! लहनासिंह ने जांचना चाहा। लपटन साहब पांच वर्ष से उसकी रेजिमेंट में थे।

"क्यों साहब, हम लोग हिन्दुस्तान कब जायंगे?"

"लड़ाई खत्म होने पर। क्यों, क्या यह देश पसन्द नहीं?"

"नहीं साहब, शिकार के वे मजे यहां कहां? याद है, पारसाल नकली लड़ाई के पीछे हम आप जगाधरी के ज़िले में शिकार करने गये थे—हाँ, हां—वहीं जब आप खोते पर सवार थे और आपका खानसामा अबदुल्ला रास्ते के एक मन्दिर में जल चढ़ाने को रह गया था?" "बेशक, पाजी कहीं का"—"सामने

से वह नीलगाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थी। और आपकी एक गोली कन्धे में लगी और पुट्ठे में निकली। ऐसे अफसर के साथ शिकार खेलने में मजा है। क्यों साहब, शिमले से तैयार होकर उस नीलगाय का शिर आ गया था आपने कहा था कि रेजिमेंट की मैस में लगाएंगे।" 'हो, पर मैंने वह विलायत भेज दिया"-- ऐसे बड़े-बड़े सींग ! दो-दो फुट के तो होंगे !"

"हाँ लहनासिंह, दो फुट चार इंच के थे। तुमने सिगरेट नहीं पिया ?"

"पीता हूँ साहब, दियासलाई ले आता हूं"—कहकर लहनासिंह खन्दक में घुसा। अब उसे सन्देह नहीं रहा था और उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए।

अंधेरे में किसी सोनेवाले से वह टकराया।

"कौन ? बज़ीरासिंह ?"

"हाँ, क्यों लहना ? क्या क़यामत आ गई ? ज़रा तो आंख लगने दी होती ?"

(४)

"होश में आओ। कयामत आई है और लपटन साहब की वर्दी पहन कर आई है।"

क्या ?'.

"लपटन साहब या तो मारे गये हैं या कैद हो गए हैं। उनकी वर्दी पहनकर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इसका

मुंह नहीं देखा। मैंने देखा है और बातें की हैं सौहरा साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू। और मुझे पीनेको सिगरेट दिया है ?'

"तो अब ?"

"अब मारे गये। धोखा है। सूबेदार कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहां खाई पर धावा होगा। उधर उन पर खुले में धावा होगा उठो, एक काम करो। पलटन के पैरों के निशान देखते-देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत दूर न गये होंगे। सूबेदार से कहो कि एकदम लौट आवें। खन्दक की बात झूठ है। चले जाओ, खन्दक के पीछे से निकल जाओ पत्ता तक न खुड़के। देर मत करो।"

"हुकम तो यह है कि यहीं..."

"ऐसी-तैसी हुकम को ! मेरा हुक्म—जमादार लहनासिंह जो इस वक्त यहां सब से बड़ा अफसर है उसका हुक्म है। मैं लपटन साहब की खबर लेता हूँ।"

"पर यहां तो तुम आठ ही हो।"

"आठ नहीं, दस लाख। एक-एक अकालिया सिख सवा लाख बराबर होता है। चले जाओ।"

लौटकर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर तीन गोले निकाले तीनों को जगह खन्दक की दीवारों में घुसेड़ दिया

और तीनों में एक तार सा बांध दिया। तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रक्खा। बाहर की तरफ जाकर एक दियासलाई गुत्थी पर रखने......

बिजली की तरह दोनों हाथों से उल्टी बन्दूक को उठाकर साहब की कुहनी पर तान कर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिंह ने एक कुन्दा साहब की गर्दन पर मारा और साहब "आंह! माई गौड़"* कहते हुए चित्त हो गए। लहनासिंह तीनों गोले बीन कर खन्दक के बाहर फेंक और साहब को घसीट कर सिगड़ी के पास लिटाजा। जेबों की तलाशी ली। तीन-चार लिफाफे और एक डायरी निकाल कर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया!

साहब की मूर्छा हटी। लहनासिंह हंसकर बोला—"क्यों लपटन साहब? मिजाज कैसा है? आज मैंने बहुत बातें सीखीं। यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधरी के ज़िले में नीलगायें होती हैं और उनके दो फुट चार इञ्च के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियों पर जल चढ़ाते हैं और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं। पर यह तो कहो ऐसी साफ उर्दू कहां से सीख आये? हमारे लपटन साहब तो बिना "डेम" के पाँच लफ्ज भी नहीं बोला करते थे।"

---

* हाय, मेरे राम?

लहना ने पतलून की जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने मानों जाड़े से बचने के लिए, दोनों हाथ जेबों में डाले।

लहनासिंह कहता गया—"चालाक तो बड़े हो पर मांझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है उसे चकमा देने के लिए चार आंखें चाहिये। तीन महीने हुए, एक तुरकी मौलवी मेरे गांव में आया था। औरतों को बच्चे होने की तावीज़ बांटता था और बच्चों को दवाई देता था। चौधरी के बड़ के नीचे मंजा बिछाकर हुक्का पीता रहता था और कहता था कि जर्मनी वाले बड़े पंडित हैं। वेद पढ़ पढ़कर उसमें से विमान चलाने की विद्या जान गए हैं। गौ को नहीं मारते। हिन्दुस्तान में आ जायंगे तो गौ-हत्या बन्द कर देंगे। मंडी के बनियों को बहकाता था कि डाकखाने से रुपये निकाल लो, सरकार का राज्य जाने वाला है। डाक-बाबू पोल्हूराम भी डर गया था मैंने मुल्ला जी की डाढ़ी मूंड़ दी थी और गांव से बाहर निकालकर कहा था। कि जो मेरे गाँव में अब पैर रक्खा तो......।"

साहब की जेब में से पिस्तौल चला और लहनासिंह की जांघ में गोली लगी। इधर लहना की हैनरीमार्टिनी के दो फायरों ने साहब की कपाल-क्रिया कर दी। धड़ाका सुनकर सब दौड़ आए।

बोधा चिल्लाया—"क्या है ?"

लहनासिंह ने उसे तो यह कह कर सुला दिया कि "एक हलका हुआ कुत्ता आया था, मार दिया" और औरों से सब हाल

कह दिया। बन्दूक लेकर सब तैयार हो गए। लहना ने साफा फाड़कर घाव के दोनों तरफ पट्टियां कसकर बांधी। घाव मांस में ही था। पट्टियों के कसने से लहू निकलना बन्द हो गया।

इतने में सत्तर जर्मन चिल्ला कर खाई में घुस पड़े। सिक्खों की बन्दूकों की बाढ़ ने पहले धावे को रोका। दूसरे को रोका। पर यहां थे आठ (लहनासिंह तक-तककर मार रहा था—वह खड़ा था, और, और लेटे हुए थे. और वे सत्तर। अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढ़कर जर्मन आगे घुसे आते थे। थोड़े से मिनटों में वे.........

अचानक आवाज़ आई "वाह गुरुजी की फतह ? वाह गुरुजी का खालसा !" और धड़ाधड़ बन्दूकों के फायर जर्मनों की पीठ पर पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच में आ गए पीछे से सूबेदार हज़ारासिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे पास आने पर पीछेवालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया।

एक किलकारी और—"अकाल सिक्खां दी फौज आई। वाह गुरुजी दी फतह ! वाह गुरुजी दा खालसा !! सत्त सिरी अकाल पुरुष !!!" और लड़ाई खतम हो गई। तिरसठ जर्मन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिक्खों में पन्द्रह के प्राण गए। सूबेदार के दाहिने कन्धे में से गोली आर-पार निकल गई। लहना सिंह की पसली में एक गोली लगी। उसने घाव को खन्दक की गीली मिट्टी से पूर लिया और बाकी का साफा कसकर कमरबन्द

की तरह लपेट लिया। किसी को खबर न हुई कि लहना के दूसरा घाव-भारी घाव-लगा है।

लड़ाई के समय चांद निकल आया था। ऐसा चाँद, जिसके प्रकाश से संस्कृत-कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी जैसी की बाणभट्ट की भाषा में 'दन्तवीणोपदेशाचार्य' कहलाती। वज़ीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन-मन भर फ्राँस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी जब मैं दौड़ा-दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था। सूबेदार लहनासिंह से सारा हाल सुन, और कागज़ात पाकर, उसकी तुरत-बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मर जाते।

इस लड़ाई की आवाज़ तीन मील दाहिनी ओर की खाई वालों ने सुन ली थी। उन्होंने पीछे टेलीफोन कर दिया था। वहां से झटपट दो डाक्टर और दो बीमार ढोने की गाड़ियाँ चलीं, जो कोई डेढ़ घण्टे के अन्दर-अन्दर आ पहुंची। फील्ड अस्पताल नज़दीक था। सुबह होते-होते वहाँ पहुंच जायंगे, इसलिए मामूली पट्टी बांधकर एक गाड़ी में घायल लिटाए गए और दूसरी में लाशें रक्खी गईं। सूबेदार ने लहनासिंह की जाँघ में पट्टी बन्धवानी चाही। पर उसने यह कहकर टाल दिया कि थोड़ा घाव है; सबेरे देखा जायगा। बोधासिंह ज्वर में बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोड़ कर सूबेदार जाते नहीं थे। यह देख लहना ने कहा—

"तुम्हें बोधा की कसम है। और सूबेदार जी को सौगंध है इस गाड़ी में न चले जाओ।"

"और तुम ?"

"मेरे लिए यहां पहुंचकर गाड़ी भेज देना। और जर्मन मुर्दों के लिए भी तो गाड़ियाँ आती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं, मैं खड़ा हूं। वज़ीरासिंह मेरे पास है ही।"

"अच्छा, पर—"

"बोधा गाड़ी पर लेट गया ? भला, आप भी चढ़ जाओ। सुनिए तो, सूबेदारनी होराँ को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना। और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझ से जो उन्होंने कहा था वह मैंने कर दिया।"

गाड़ियाँ चल पड़ी थीं। सूबेदार ने चढ़ते-चढ़ते लहना का हाथ पकड़कर कहा—"तैने मेरे और बोधा के प्राण बचाए हैं। लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी से तू ही कह देना। उसने क्या कहा था ?"

"अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ। मैंने जो कहा वह लिख देना और कह भी देना।"

गाड़ी के जाते ही लहना लेट गया। "वज़ीरा, पानी पिलादे और मेरा कमरबन्द खोल दे। तर हो रहा है।"

(५)

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म भर की घटनायें एक-एक करके सामने आती है। सारे दृश्यों के रङ्ग साफ होते हैं, समय की धुन्ध बिल्कुल उन पर से हट जाती है।

❀ ❀ ❀

लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहां आया हुआ है। दहीवाले के यहाँ, सब्जीवाले के यहाँ, हर कहीं, उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है कि तेरी कुड़माई हो गई ? तब 'धत्' कह कर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा तो उसने कहा—'हां, कल हो गई, देखते नहीं यह रेशम के फूलों वाला सालू ?' सुनते ही लहनासिंह को दुःख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ ?

"वज़ीरासिंह, पानी पिला दे।"

❀ ❀ ❀

पच्चीस वर्ष बीत गए। अब लहनासिंह नं० ७७ राइफल्स में जमादार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न मालूम वह कभी मिली थी. या नहीं। सात दिन की छुट्टी लेकर ज़मीन के मुकदमे की पैरवी करने वह अपने घर गया। वहाँ रेजीमेंट के अफसर की चिट्ठी मिली कि फौज लाम पर जाती है। फौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हज़ारासिंह की चिट्ठी मिली कि मैं और बोधासिंह भी लाम पर जाते हैं. लौटते हुए हमारे

घर होते जाना। साथ चलेंगे। सूबेदार का गांव रास्ते में पड़ता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिंह सूबेदार के यहां पहुंचा।

जब चलने लगे तब सूबेदार बेड़े में से निकल कर आया। बोला—'लहना, सूबेदारनी तुझको जानती है? बुलाती है। जा मिल आ।' लहनासिंह भीतर पहुंचा। सूबेदारनी मुझे जानती है? कब से रेजीमेंट के क्वार्टरों में तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नहीं। दरवाज़े पर जाकर 'मत्था टेकना' कहा। असीस सुनी। लहनासिंह चुप।

"मुझे पहिचाना?"

"नहीं।"

'तेरी कुड़माई हो गई?—धत्—कल हो गई—देखा नहीं रेशमी बूटों वाला सालू—अमृतसर में—'

भावों की टकराहट में मूर्छा खुली। करवट बदली। पसली का घाव बह निकला।

"वज़ीरा, पानी पिला"—उसने कहा था।

❀ ❀ ❀

स्वपन चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है—'मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूं मेरे तो भाग फूट गए। सरकार ने बहादुर का खिताब दिया है, लायलपुर में ज़मीन दी है, आज नमकहलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम तीमियों

की घघरिया पलटन क्यों न बना दी जो मैं भी सूबेदार जी के साथ चली जाती ? एक बेटा है। फौज में भरती हुए उसे एक ही वर्ष हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया।' सूबेदारनी रोने लगी—'अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग्य ? तुम्हें याद है, एक दिन टाँगेवाले का घोड़ा दही वाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोड़े की लातों में चले गये थे। और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। 'ऐसे ही इन दोनों को बचाना' यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूं।

रोती-रोती सूबेदारनी ओबरी में चली गई। लहना भी आँसू पोछता हुआ बाहर आया।

"वज़ीरासिंह, पानी पिला" उसने कहा था।



लहना का सिर अपनी गोदी पर रक्खे वज़ीरासिंह बैठा है। जब मांगता है, तब पानी पिला देता है। आध घण्टे तक लहना चुप रहा, फिर बोला—

"कौन ? कीरतसिंह ?"

वज़ीरा ने कुछ समझ कर कहा, "हां।"

"भइया, मुझे कुछ ऊंचा करले। अपनी जंघा पर मेरा सिर रखले।" वज़ीरा ने वैसा ही किया।

"हां, अब ठीक है। पानी पिलादे। बस। अब के हाड़ में यह आम खूब फलेगा। चाचा-भतीजा दोनों यहीं बैठ कर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है, उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था उसी महीने में मैंने इसे लगाया था।"

वज़ीरासिंह के आँसू टप-टप टपक रहे थे।

❀ ❀ ❀

कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा—

फ्रांस और बेलजियम—६८ वीं सूची—मैदान में घावों से मरा—नं० ७७ सिख राइफल्स जमादार लहनासिंह।

---

[३]

पुरस्कार

(स्व० श्री जयशङ्कर प्रसाद)

आर्द्रा नक्षत्र, आकाश में काले-काले बादलों की घुमड़, जिसमें देव-दुन्दुभी का गम्भीर घोष। प्राचीर के एक निरभ्र कोने से स्वर्ण-पुरुष झांकने लगता था—देखने लगा महाराज की सवारी। शैलमाला के अञ्चल में समतल उर्वरा भूमि से सोंधी बास उठ रही थी। नगर-तोरण से जय-घोष हुआ, भीड़ में गजराज का चामरधारी शुंड उन्नत दिखाई पड़ा। वह हर्ष और उत्साह का समुद्र हिलोरें भरता हुआ आगे बढ़ने लगा।

प्रभात की हेम किरणों से अनुरंजित नन्हीं-नन्हीं बूंदों का एक झोंका स्वर्ण-मल्लिका के समान बरस पड़ा। मङ्गल-सूचना से जनता ने हर्ष-ध्वनि की।

रथों, हाथियों और अश्वारोहियों की पंक्ति जम गई। दर्शकों की भीड़ भी कम न थी। गजराज बैठ गया, सीढ़ियों से महाराज उतरे। सौभाग्यवती और कुमारी सुन्दरियों के दो दल, आम्र-पल्लवों

से सुशोभित मंगल-कलश और फूल, कुंकुम तथा खीलों से भरे थाल लिए मधुर गान करते हुए आगे बढ़े।

महाराज के मुख पर मधुर मुस्कराहट थी। पुरोहित-वर्ग ने स्वस्त्ययन किया। स्वर्ण रंजित हल की मूठ पकड़ कर महाराज ने जुते हुए सुन्दर पुष्ट बैलों को चलने का संकेत किया। बाजे बजने लगे। किशोरी कुमारियों ने खीलों और फूलों की वर्षा की।

कोशल का यह उत्सव प्रसिद्ध था। एक दिन के लिए महाराज को कृषक बनना पड़ा—उस दिन इन्द्र-पूजन की धूम-धाम होती, गोठ होती। नगर-निवासी उस पहाड़ी भूमि में आनन्द मानते। प्रतिवर्ष कृषि का यह महोत्सव उत्साह से संपन्न होता, दूसरे राज्यों से भी युवक राजकुमार इस उत्सव में बड़े चाव से आकर योग देते।

मगध का एक राजकुमार अरुण अपने रथ पर बैठा बड़े कुतूहल से यह दृश्य देख रहा था।

बीजों का एक थाल लिए कुमारी मधूलिका महाराज के साथ थी। बीज बोते हुए महाराज जब हाथ बढ़ाते तब मधूलिका उनके सामने थाल कर देती। यह खेत मधूलिका का था; इस साल महाराज की खेती के लिए चुना गया था। इस लिए बीज देने का सम्मान मधूलिका ही को मिला। वह कुमारी थी। सुन्दरी थी कौशेय वसन उसके शरीर पर इधर-उधर लहराता हुआ स्वयं शोभित हो रहा था। वह कभी उसे सम्हालती और कभी अपने

रूखे अलकों को। कृषक-बालिका के शुभ्र भाल पर श्रमकणों की भी कमी न थी। वे सब बरौनियों में गुंथे जा रहे थे, सम्मान और लज्जा उसके अधरों पर मन्द मुस्कराहट के साथ सिहर उठते, किन्तु महाराज को बीज देने में उसने शिथिलता न दिखलाई। सब लोग महाराज का हल चलाना देख रहे थे—विस्मय से, कुतूहल से। और अरुण देख रहा था कृषक-कुमारी मधूलिका को। आह कितना भोला सौन्दर्य! कितनी सरल चितवन!

उत्सव का प्रधान कृत्य समाप्त हो गया। महाराज ने मधूलिका के खेत का पुरस्कार दिया थाल में कुछ स्वर्ण-मुद्राएं। वह राजकीय अनुग्रह था। मधूलिका ने थाली सिर से लगा ली, किन्तु साथ ही उसने स्वर्ण मुद्राओं को महाराज पर न्योछावर करके बिखेर दिया। मधूलिका की उस समय की ऊर्जस्वित मूर्ति को लोग आश्चर्य से देखने लगे। महाराज की भृकुटि भी ज़रा चढ़ी ही थी कि मधूलिका ने सविनय कहा—'देव! यह मेरे पितृ-पितामहों की भूमि है। इसे बेचना अपराध है, इसलिए मूल्य स्वीकार करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है।' महाराज के बोलने के पहले ही वृद्ध मन्त्री ने तीखे स्वर से कहा—"अबोध! क्या बक रही है? राजकीय अनुग्रह का तिरस्कार। तेरी भूमि से चौगुना मूल्य है; फिर कोशल का यह सुनिश्चित राष्ट्रीय नियम है। तू आज से राजकीय रक्षण पाने की अधिकारिणी हुई; इस धन से अपने को सुखी बना।"

महाराज के संकेत करने पर मन्त्री ने कहा—"देव! वाराणसी-युद्ध के अन्यतम वीर सिंहमित्र की यह एकमात्र कन्या।"

महाराज चौंक उठे—"सिंहमित्र की कन्या। जिसने मगध के सामने कोशल की लाज रख ली थी, उसी वीर की मधूलिका कन्या है।"

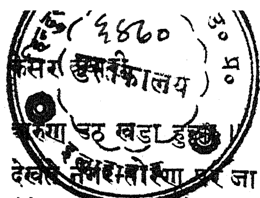
हाँ, देव।" सविनय मन्त्री ने कहा।

"इस उत्सव के परंपरागत नियम क्या हैं, मंत्रीवर?" महाराज ने पूछा।

"देव, नियम तो बहुत साधारण हैं। किसी भी अच्छी भूमि को हम उत्सव के लिए चुनकर नियमानुसार पुरस्कार-स्वरूप उस का मूल्य दे दिया जाता है। वह भी अत्यन्त अनुग्रहपूर्वक अर्थात् भूसम्पत्ति का चौगुना मूल्य उसे मिलता है। उस खेती को वही व्यक्ति वर्ष भर देखता है। वह राजा का खेत कहा जाता है।"

महाराज को विचार-संघर्ष से विश्राम की अत्यंत आवश्यकता थी। महाराज चुप रहे। जयघोष के साथ सभा विसर्जित हुई। सब अपने अपने शिविरों में चले गए। मधूलिका को उत्सव में फिर किसी ने न देखा। वह अपने खेत की सीमा पर विशाल मधूक-वृक्ष के चिकने हरे पत्तों की छाया में अनमनी चुपचाप बैठी रही।

रात्रि का उत्सव अब विश्राम ले रहा था। राजकुमार उस में सम्मिलित नहीं हुआ—अब अपने विश्राम-भवन में जागरण कर रहा था। आँखों में नींद न थी। प्राचीन में जैसी गुलाली खिल रही थी, वही रंग उसकी आँखों में था। सामने देखा तो मुंडेर पर कपोती एक पैर से खड़ी पङ्ख फैलाए अंगड़ाई ले रही थी।



अरुण उठ खड़ा हुआ। द्वार पर सुसज्जित अश्व था। वह देखते देखते नगर-तोरण पर जा पहुंचा। रक्षक-गण ऊंघ रहे थे, अश्व के पैरों के शब्द से चौंक उठे।

युवक कुमार तीर-सा निकल गया। सिन्धु देश का तुरंग प्रभात के पवन से पुलकित हो रहा था। घूमता-घूमता अरुण उसी मधूक-वृक्ष के नीचे पहुंचा, जहाँ मधूलिका अपने हाथ पर सिर धरे हुए खिन्न-निद्रा का सुख ले रही थी।

अरुण ने देखा, एक छिन्न माधवी-लता वृक्ष की शाखा से च्युत होकर पड़ी है। सुमन मुकुलित थे, भ्रमर निस्पंद। अरुण ने अपने अश्व को मौन रहने का संकेत किया, उस सुषमा को देखने के लिए। परन्तु कोकिल बोल उठा। उसने अरुण से प्रश्न किया —"छिः, कुमारी के सोए हुए सौन्दर्य पर दृष्टिपात करनेवाले धृष्ट, तुम कौन?" मधूलिका की आंखें खुल पड़ीं। उसने देखा, एक अपरिचित युवक। वह संकोच से उठ बैठी। "भद्रे! तुम्हीं न कल के उत्सव की संचालिका रही हो?"

"उत्सव! हां, उत्सव ही तो था।"

"कल उस सम्मान... ... ..."

"क्यों आप को कल का स्वप्न सता रहा है? भद्र! आप क्या मुझे इस अवस्था में संतुष्ट न रहने देंगे?"

"मेरा हृदय तुम्हारी उस छवि का भक्त बन गया है देवी!"

"मेरे उस अभिनय का—मेरी विडम्बना का। आह! मनुष्य कितना निर्दय है, अपरिचित! क्षमा करो, जाओ अपने मार्ग।"

"सरलता की देवि! मैं मगध का राजकुमार तुम्हारे अनुग्रह का प्रार्थी हूँ—मेरे हृदय की भावना अवगुंठना में रहना नहीं जानती। उसे अपनी ... ..."

"राज कुमार! मैं कृषक बालिका हूँ। आप नन्दनविहारी और मैं पृथ्वी पर परिश्रम करके जीनेवाली। आज मेरी स्नेह की भूमि पर से मेरा अधिकार छीन लिया गया है। मैं दुःख से विकल हूँ; मेरा उपहास न करो।"

"मैं कोशल-नरेश से तुम्हारी भूमि तुम्हें दिलवा दूंगा।"

नहीं, वह कोशल का राष्ट्रीय नियम है। मैं उसे बदलना नहीं चाहती—चाहे उससे मुझे कितना ही दुःख हो?"

"तब तुम्हारा रहस्य क्या है?"

"यह रहस्य मानव-हृदय का है, मेरा नहीं। राजकुमार, नियमों से यदि मानव-हृदय बाध्य होता तो आज मगध के राजकुमार का हृदय किसी राजकुमारी की ओर खींचकर एक कृषक-बालिका का अपमान करने न आता।" मधूलिका उठ खड़ी हुई।

चोट खाकर राजकुमार लौट पड़ा। किशोर किरणों में उस का रत्नकिरीट चमक उठा। अश्व वेग से चला जा रहा था और मधूलिका निष्ठुर प्रहार करके क्यों स्वयं आहत न हुई? उसके हृदय में टीस-सी होने लगी। वह सजल नेत्रों से उड़ती हुई धूल देखने लगी।

मधूलिका ने राजा का प्रतिदान, अनुग्रह नहीं लिया। वह दूसरे खेतों में काम करती और चौथे पहर रूखी-सूखी खाकर पड़ रहती। मधूक-वृक्ष के नीचे छोटी सी पर्ण-कुटीर थी। सूखे डंठलों से उसकी दीवार बनी थी। मधूलिका का वही आश्रम था। कठोर परिश्रम से जो रूखा अन्न मिलता वही उसकी सांसों को बढ़ाने के लिए पर्याप्त था। दुबली होने पर भी उसके अङ्ग पर तपस्या की कान्ति थी। आसपास के कृषक उसका आदर करते। वह एक आदर्श बालिका थी। दिन, सप्ताह, महीने और वर्ष बीतने लगे।

शीतकाल की रजनी, मेघों से भरा आकाश, जिसमें बिजली की दौड़-धूप। मधूलिफा का छाजन टपक रहा था, ओढ़ने की कमी थी। वह ठिठुर कर एक कोने में बैठी थी। मधूलिका अपने अभाव को आज बढ़ाकर सोच रही थी। जीवन से सामंजस्य बनाए रखने वाले उपकरण तो अपनी सीमा निर्धारित रखते हैं, परन्तु उनकी आवश्यकता और कल्पना भावना के साथ बढ़ती-घटती रहती है। आज बहुत दिनों बाद उसे बीती हुई बात स्मरण हुई—"दो, नहीं-नहीं, तीन वर्ष हुए होंगे, इसी मधूक के नीचे, प्रभात में—तरुण राजकुमार ने क्या कहा था ?"

वह अपने हृदय से पूछने लगी—उन चाटुकी के शब्दों को सुनने के लिए उत्सुक-सी पूछने लगी—"क्या कहा ?" दुख-दग्ध हृदय उन स्वप्न सी बातों का स्मरण रख सकता और स्मरण ही होता तो भी कष्टों की इस काली निशा में वह कहने का साहस करता। हाय री, विडम्बना !

आज मधूलिका उस बीते हुए क्षण को लौटा लेने के लिए विकल थी। असहाय दरिद्र की ठोकरों ने उसे व्यथित और अधीर कर दिया है। मगध की प्रासाद-माला के वैभव का काल्पनिक चित्र उन सूखे डंठलों की रंध्रों से नीचे नभ में-बिजली के आलोक में-नाचता हुआ दिखाई देने लगा। खिलवाड़ी शिशु जैसे श्रावण की सन्ध्या में जुगुनू को पकड़ने के लिए हाथ लपकाता है वैसे ही मधूलिका 'अभी वह निकल गया' मन-ही-मन कह रही थी। वर्षा ने भीषण रूप धारण किया। गड़गड़ाहट बढ़ने लगी, ओले पड़ने की सम्भावना थी। मधूलिका अपनी जर्जर झोंपड़ी के लिए कांप उठी। सहसा बाहर कुछ शब्द हुआ—

"कौन है यहां ? पथिक को आश्रय चाहिए।

मधूलिका ने डंठलों का कपाट खोल दिया। बिजली चमक उठी। उसने देखा, एक पुरुष घोड़े की डोर पकड़े खड़ा है। सहसा वह चिल्ला उठी—"राज कुमार !"

"मधूलिका ?" आश्चर्य से युवक ने कहा।

एक क्षण के लिए सन्नाटा छा गया। मधूलिका अपनी कल्पना को सहसा प्रत्यक्ष देखकर चकित हो गई, इतने दिनों के बाद आज फिर !

अरुण ने कहा—"कितना समझाया मैंने—परन्तु......"

मधूलिका अपनी दयनीय अवस्था पर संकेत करने देना नहीं चाहती थी। उसने कहा—"और आज आपकी यह क्या दशा है ?"

सिर झुकाकर अरुण ने कहा—"मैं मगध का विद्रोही निर्वासित कोशल में जीविका खोजने आया हूं।"

मधूलिका उस अंधकार में हंस पड़ी—"मगध के विद्रोही राजकुमार का स्वागत करे एक अनाथिनी कृषक बालिका, यह भी एक विडम्बना है; तो भी मैं स्वागत के लिए प्रस्तुत हूँ।'

शीतकाल की निस्तब्ध रजनी, कुहरे से धुली हुई चाँदनी, हाड़ कंपाने वाला समीर तो भी अरुण और मधूलिका दोनों पहाड़ी गह्वर के द्वार पर बटवृक्ष के नीचे बैठे हुए बातें कर रहे हैं। मधूलिका की वाणी में उत्साह था, किन्तु अरुण जैसे अत्यन्त सावधान होकर बोलता।

मधूलिका ने पूछा—"जब तुम इतनी विपन्न अवस्था में हो तो फिर इतने सैनिकों को साथ रखने की क्या आवश्यकता है?"

"मधूलिका! बाहुबल ही तो वीरों की आजीविका है। ये मेरे जीवन-मरण के साथी हैं। भला मैं इन्हें कैसे छोड़ देता? और करता ही क्या?"

"क्यों? हम लोग परिश्रम से कमाते और खाते। अब तो तुम।"

"भूल न करो, मैं अपने बाहुबल पर भरोसा करता हूं। नए राज्य की स्थापना कर सकता हूँ, निराश क्यों हो जाऊं?"

अरुण के शब्दों में कम्पन था। वह जैसे कुछ कहना चाहता था, पर कह न सकता था।

"नवीन राज्य! ओहो, तुम्हारा उत्साह तो कम नहीं। भला कैसे? कोई ढङ्ग बताओ, तो मैं भी कल्पना का आनन्द लेलूं।'

"कल्पना का आनन्द नहीं मधूलिका, मैं तुम्हें राजरानी के सम्मान में सिंहासन पर बिठाऊंगा। तुम अपने छिने हुए खेत की चिन्ता करके भयभीत न होवो।"

एक क्षण में सरला मधूलिका के मन में प्रमाद का अंधड़ बहने लगा—द्वन्द्व मच गया। उसने सहसा कहा—"आह, मैं सचमुच आज तक तुम्हारी प्रतीक्षा करती थीं, राजकुमार।"

अरुण ढिठाई से उसके हाथों को दबाकर बोला—"तो मेरा भ्रम था, तुम सचमुच मुझे प्यार करती हो?"

युवती का वक्षस्थल फूल उठा, वह हां भी नहीं कह सकी, ना भी नहीं। अरुण ने उसकी अवस्था का अनुभव कर लिया। कुशल मनुष्य के समान उसने अवसर को हाथ से न जाने दिया, तुरन्त बोल उठा—"तुम्हारी इच्छा हो तो प्राणों से प्राण लगाकर मैं तुम्हें इसी कोशल-सिंहासन पर बिठादूं। मधूलिका! अरुण के खड्ग का आतंक देखोगी?" मधूलिका एक बार कांप उठी। वह कहना चाहती थी, नहीं—किन्तु उसके मुंह से निकला "क्या?"

"सत्य मधूलिका, कोशल-नरेश तभी तुम्हारे लिए चिन्तित है। यह मैं जानता हूँ, तुम्हारी साधारण सी प्रार्थना वह अस्वी-

कार न करेंगे। और मुझे यह भी विदित है कि कोशल के सेनापति अधिकांश सैनिकों के साथ दस्युओं का दमन करने के लिए बहुत दूर चले गए हैं।"

मधूलिका की आंखों के आगे बिजलियां हंसने लगीं। दारुण भावना से उसका मस्तक विकृत हो उठा। अरुण ने कहा—"तुम बोलती नहीं हो ?"

"जो कहोगे वही करूंगी"–मंत्रमुग्ध-सी मधूलिका ने कहा।



स्वर्णमञ्च पर कोशल-नरेश अधलेटी अर्द्धनिद्रित अवस्था में आंखें मुकुलित किए हैं। एक चामर धारिणी युवती पीछे खड़ी अपनी कलाई बड़ी कुशलता से घुमा रही है। चमार के शुभ्र आंदोलन उस प्रकोष्ठ में धीरे-धीरे संचलित हो रहे हैं। ताम्बूल-वाहिनी प्रतिमा के समान दूर खड़ी है।

प्रतिहारी ने आकर कहा—"जय हो देव! एक स्त्री कुछ प्रार्थना करने आई है।"

आंखें खोलते हुए महाराज ने कहा—"स्त्री ? प्रार्थना करने आई है ? आने दो !"

प्रतिहारी के साथ मधूलिका आई। उसने प्रणाम किया। महाराज ने स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखा और कहा—"तुम्हें कहीं देखा है।"

'तीन बरस हुए देव ! मेरी भूमि खेती के लिए ली गई थी।'

"ओह, तो तुमने इतने दिन कष्ट में बिताए, आज उसका मूल्य मांगने आई हो, क्यों अच्छा-अच्छा तुम्हें मिलेगा। प्रतिहारी !"

"नहीं महाराज मुझे मूल्य नहीं चाहिए।"

"मूर्खे ! फिर क्या चाहिए !"

"उतनी ही भूमि, दुर्ग के दक्षिणी नाले के समीप की जंगली भूमि। वहीं मैं अपनी खेती करूंगी। मुझे एक सहायक मिल गया है। वह मनुष्यों से मेरी सहायता करेगा, भूमि को समतल भी तो बनाना होगा।

महाराज ने कहा—"कृषक बालिके ! वह बड़ी ऊबड़-खाबड़ भूमि है। तिस पर वह दुर्ग के समीप एक सैनिक महत्व रखती है।"

"तो फिर निराश लौट जाऊं ?"

"सिंहमित्र की कन्या ! मैं क्या करूं, तुम्हारी यह प्रार्थना......।"

"देव ! जैसी आज्ञा हो।"

"जाओ, तुम श्रमजीवियों को उस में लगाओ। मैं अमात्य को आज्ञापत्र देने का आदेश करता हूं।"

"जय हो देव !" कह कर प्रणाम करती हुई मधूलिका राजमन्दिर के बाहर आई।



दुर्ग के दक्षिण, भयावने नाले के तट पर, घना जंगल है। आज वहां मनुष्यों के पद-संचार से शून्यता भंग हो रही थी। अरुण के छिपे हुए मनुष्य स्वतन्त्रता से इधर-उधर घूमते थे। झाड़ियों को काटकर पथ बन रहा था। नगर दूर था, फिर उधर यों ही कोई नहीं आता था। फिर अब तो महाराज की आज्ञा से वहां मधूलिका का अच्छा खेत बन रहा था। किस को इसकी चिन्ता थी ?

एक घने कुञ्ज में अरुण और मधूलिका एक दूसरे को हर्षित नेत्रों से देख रहे थे। संध्या हो चली थी। उस निबिड़ वन में उन नवागत मनुष्यों को देख कर पक्षीगण अपने नीड़ को लौटते हुए अधिक कोलाहल कर रहे थे।

प्रसन्नता से अरुण की आंखें चमक उठीं। अरुण ने कहा, —"चार पहर और विश्राम करो, और प्रभात में ही इस जीर्ण-कलेवर कोशल राष्ट्र की राजधानी श्रावस्ती में तुम्हारा अभिषेक होगा। और मगध से निर्वासित मैं, एक स्वतन्त्र राष्ट्र का अधिपति बनूंगा, मधूलिके !"

"भयानक ! अरुण तुम्हारा साहस देखकर मैं चकित हो रही हूं। केवल सौ सैनिकों से तुम........."

रात के तीसरे पहर मेरी विजय-यात्रा होगी, मधूलिके !"

"तो तुमको इस विजय पर विश्वास है ?"

"अवश्य ! तुम अपनी झोंपड़ी में यह रात बिताओ; प्रभात से तो राजमन्दिर ही तुम्हारा लीला-निकेतन बनेगा।"

मधूलिका प्रसन्न थी, किन्तु अरुण के लिए उसकी कल्याण-कामना सशंक थी, वह कभी-कभी उद्विग्न-सी होकर बालकों के समान प्रश्न कर बैठती। अरुण उसका समाधान कर देता।

सहसा कोई संकेत पाकर उसने कहा—"अच्छा, अंधकार अधिक हो गया। अभी तुम्हें दूर जाना है और मुझे भी प्राणपण से इस अभियान के प्रारम्भिक कार्यों को अर्ध-रात्रि तक पूरा कर लेना चाहिए। इसलिए रात्रि भर के लिये विदा।"

मधूलिका उठ खड़ी हुई। कटीली झाड़ियों से उलझती हुई, क्रम से बढ़ने वाले अन्धकार में, वह अपनी झोंपड़ी की ओर चली।



पथ अन्धकार-मय था और मधूलिका का हृदय भी निबिड़ तमसे घिरा था। उसका मन सहसा विचलित हो उठा, मधुरता नष्ट हो गई। जितनी सुख-कल्पना थी, वह जैसे अन्धकार में विलीन होने लगी। वह भयभीत थी, पहला भय उसे अरुण के लिए उत्पन्न हुआ, यदि वह सफल न हुआ तो? फिर सहसा सोचने लगी, वह क्यों सफल हो? श्रावस्ती-दुर्ग एक विदेशी के अधिकार में क्यों चला जाय? मगध कोशल का चिर शत्रु! आह, उसकी विजय! कोशल-नरेश ने क्या कहा था—सिंहमित्र की कन्या।' सिंहमित्र कोशल का रक्षक वीर, उसी की कन्या आज क्या करने जा रही है? नहीं। 'मधूलिका!' मधूलिका!' जैसे उसके पिता उस अन्धकार में पुकार रहे थे। वह पगली की तरह चिल्ला उठी। रास्ता भूल गई।

रात एक पहर बीत चली, पर मधूलिका अपनी झोंपड़ी तक न पहुंची। वह उधेड़-बुन में विक्षिप्त सी चली जा रही थी। उसकी आंखों के सामने कभी सिंहमित्र और कभी अरुण की मूर्ति अंधकार में चित्रित हो जाती है। उसे सामने आलोक दिखाई पड़ा। वह बीच पथ में खड़ी हो गई। प्रायः एक सौ उल्काधारी अश्वारोही चले आ रहे थे और आगे आगे एक वीर अधेड़ सैनिक था। उसके बाएं हाथ में अश्व की वल्गा और दाहिने हाथ में नग्न खड्ग। अत्यन्त धीरता से वह टुकड़ी अपने पथ पर चल रही थी। परन्तु मधूलिका बीच पथ से हिली नहीं। प्रमुख सैनिक पास आ गया, पर मधूलिका अब भी नहीं हटी। सैनिक ने अश्व रोक कर कहा—"कौन?" कोई उत्तर नहीं मिला। तब तक दूसरे अश्वारोही ने कड़क कर कहा—तू कौन है स्त्री? कोशल के सेनापति को उत्तर शीघ्र दे।"

रमणी जैसे विकारग्रस्त स्वर में चिल्ला उठी—"बाँध लो मुझे, बांधलो! मेरी हत्या करो। मैंने अपराध ही ऐसा किया है।"

सेनापति हंस पड़े और बोले—"पगली है।"

"पगली! नहीं यदि वही होती तो इतनी विचार-वेदना क्यों होती? सेनापति! मुझे बांध लो। राजा के पास ले चलो।"

"क्या है? स्पष्ट कह!"

"श्रावस्ती का दुर्ग एक प्रहार में दस्युओं के हस्तगत हो जायगा। दक्षिणी नाले के पार उनका आक्रमण होगा।"

सेनापति चौंक उठे। उन्होंने आश्चर्य से पूछा—"तू क्या कह रही है ?"

"मैं सत्य कह रही हूँ, शीघ्रता करो।"

सेनापति ने अस्सी सैनिकों को नाले की ओर धीरे-धीरे बढ़ने की आज्ञा दी और स्वयं बीस अश्वारोहियों के साथ दुर्ग की ओर बढ़े। मधूलिका एक अश्वारोही के साथ बांध दी गई।



'श्रावस्ती का दुर्ग' कोशल राष्ट्र का केन्द्र, इस रात्रि में अपने विगत वैभव का स्वप्न देख रहा था। भिन्न राजवंशों ने उसके प्रांतों पर अधिकार जमा लिया है। अब वह कई गाँवों का अधिपति है। फिर भी उसके साथ कोसल के अतीत की स्वर्ण-गाथाएं लिपटी हैं। वही लोगों की ईर्ष्या का कारण है। दुर्ग के प्रहरी चौंक उठे, जब थोड़े से अश्वारोही बड़े वेग से आते हुए दुर्ग-द्वार पर रुके। जब उल्का के आलोक में उन्होंने सेनापति को पहचाना, तब द्वार खुला। सेनापति घोड़े की पीठ से उतरे। उन्होंने कहा—अग्निसेन! दुर्ग में कितने सैनिक होंगे ?"

"सेनापति की जय हो! दो सौ!"

"उन्हें शीघ्र एकत्र करो परन्तु बिना किसी शब्द के। १०० को लेकर तुम शीघ्र ही चुपचाप दुर्ग के दक्षिण की ओर चलो। आलोक और शब्द न हो।"

सेनापति ने मधूलिका की ओर देखा। वह खोल दी गई। उसे अपने पीछे आने का संकेत कर सेनापति राजमन्दिर की ओर बढ़े। प्रतिहारी ने सेनापति को देखते ही महाराज को सावधान किया। वह अपनी सुख निद्रा के लिए प्रस्तुत हो रहे थे। किन्तु सेनापति और साथ में मधूलिका को देखते ही चञ्चल हो उठे। सेनापति ने कहा—"जय हो देव ! इस स्त्री के कारण मुझे इस समय उपस्थित होना पड़ा है।"

महाराज ने स्थिर नेत्रों से देखकर कहा—"सिंहमित्र की कन्या, फिर यहाँ क्यों ?— क्या तुम्हारा क्षेत्र नहीं बन रहा है ? कोई बाधा ? सेनापति ! मैंने दुर्ग के दक्षिणी नाले के समीप की भूमि इसे दी है। क्या उसी सम्बन्ध में तुम कहना चाहते हो ?"

"देव ! किसी गुप्तशत्रु ने उसी ओर से आज की रात में दुर्ग पर अधिकार कर लेने का प्रबन्ध किया है। और इसी स्त्री ने मुझे पथ में यह संदेश दिया है।"

राजा ने मधूलिका की ओर देखा। वह कांप उठी। घृणा और लज्जा से वह गड़ी जा रही थी। राजा ने पूछा—"मधूलिका, यह सत्य है ?"

"हां, देव !"

राजा ने सेनापति से कहा—"सैनिकों को एकत्र करके तुम चलो मैं अभी आता हूँ।" सेनापति के चले जाने पर राजा ने कहा—"सिंहमित्र की कन्या ! तुम ने एक बार फिर कोसल का

उपकार किया। यह सूचना देकर तुमने पुरस्कार का काम किया है। अच्छा, तुम यहीं ठहरो। पहले उन आततायियों का प्रबन्ध कर लूं।"

❀ ❀ ❀

अपने साहसिक अभिमान में अरुण बन्दी हुआ और दुर्ग उल्का के आलोक में अतिरंजित हो गया। भीड़ ने जय-घोष किया। सब के मन में उल्लास था। श्रावस्ती दुर्ग आज एक दस्यु के हाथ में जाने से बचा। आबाल-वृद्ध-नारी आनन्द से उन्मत्त हो उठे।

उषा के आलोक में सभा-मंडप दर्शकों से भर गया। बन्दी अरुण को देखते ही जनता ने रोष से हुंकार की—"वध करो!" राजा ने सहमत होकर कहा, "प्राणदण्ड"। मधूलिका बुलाई गई। वह पगली-सी आकर खड़ी हो गई। कोशल नरेश ने पूछा—"मधूलिका तुझे जो पुरस्कार लेना हो, मांग।" वह चुप रही।

राजा ने कहा—"मेरे निज की जितनी खेती है, मैं सब तुझे देता हूं"। मधूलिका ने एक बार बन्दी अरुण की ओर देखा। उस ने कहा—"मुझे कुछ न चाहिये।" अरुण हँस पड़ा। राजा ने कहा—"नहीं, मैं तुझे अवश्य दूंगा, मांग लो।"

"तो मुझे भी प्राण दंड मिले।" कहती हुई वह बन्दी अरुण के पास जा खड़ी हुई।

—:o:—

[४]

स्वाभिमानी नमक-हलाल

(स्व० श्री विश्वम्भर नाथ कौशिक)

बहुत दौड़ धूप और चिकित्सा होने पर भी सेठ छंगामल की दशा न सुधरी। वह प्रतिदिन चिता के निकट पहुंचते जा रहे थे। वृद्ध छंगामल को भी यह भली भाँति विदित हो गया था कि उनकी रोग-शय्या बहुत शीघ्र मृत्यु-शय्या में परिवर्तित होने वाली है। इसीलिये उन्होंने एक दिन अपने मुनीम मटरूमल को अपने पास बुलाया। उस समय मटरूमल की आयु ६० वर्ष के लगभग थी। मटरूमल के आने पर सेठ छंगामल ने उन्हें अपने पास बिठा कर कहा—"मुनीम जी, मेरा तो अब चल-चलाव लग रहा है, न-जाने किस समय दम निकल जाय। अच्छा है। मुझे संतोष है। हाथ-पैर चलते चला जाऊं। इससे अधिक और क्या चाहिए ? मुझे

कोई अभिलाषा नहीं रही—संसार के सभी सुख-दुःख देख चुका। कमाया भी खूब—खर्च भी खूब किया। भगवान् का दिया सब कुछ है। पोती-पोतों का सुख भी देख लिया। बस, अब तो ईश्वर जितना शीघ्र इस कष्ट से छुड़ावे, अच्छा है।"

वृद्ध मुनीम के चेहरे पर शोकमय गंभीरता दौड़ गई। कुछ रुंधे हुए कंठ से उन्होंने कहा—"परमात्मा आपको अच्छा कर दे। अभी आपकी आयु ही क्या है? मुझसे दो-चार बरस आप छोटे ही है। जब मैं हट्टा-कट्टा बैठा हूँ, तो आपका उठ खड़ा होना कौन आश्चर्य की बात है?"

सेठ छंगामल विषादमय मृदु हास्य करके बोले—"तेरा उठ खड़ा होना बिल्कुल असंभव है। मृत्यु आठों पहर मेरी आँखों के सामने खड़ी रहती है. परन्तु न जाने वह देर क्यों कर रही है?"

मटरूमल—"आप ऐसी बातें मत सोचिए, इनके सोचने से कोई लाभ नहीं। अपने चित्त को प्रसन्न रखिए और यह विश्वास करिए कि आप अवश्य अच्छे हो जायंगे।"

सेठ छंगामल कुछ अप्रसन्न से होकर बोले—"मेरी दशा इन आशाओं से कभी नहीं सुधर सकती। ये आशाएं और विश्वास मुझे मौत के पंजे से नहीं छुड़ा सकते।"

मुनीम जी कुछ कहने ही को थे, परन्तु सेठजी ने उन्हें हाथ के इशारे से रोककर कहा—"मुनीम जी, आप मुझे बहलाने की चेष्टा मत कीजिए। अब लोकाचार का समय नहीं रहा। मैंने आप

को जिस काम के लिये बुलाया हैं; उसे सुनिए और समझिए।"

मुनीमजी—"मुझे जो आज्ञा हो, वह मैं सदैव करने के लिये—"

सेठजी—"इसके कहने की कोई आवश्यकता नहीं। आप को मेरे यहां रहते हुए ३० वर्ष हो चुके हैं। इतने दिनों में मुझे आपके विषय में पूरी जानकारी हासिल हो चुकी है। मुझे जितना विश्वास आप पर है, उतना चुन्नू पर भी नहीं।"

मुनीमजी—"यह सब आपकी कृपा—"

सेठजी—"कृपा नहीं, सच्ची बात है। अच्छा, ज़रा चुन्नू को बुलवाइए।"

मुनीमजी उठकर बाहर चले गए और दस मिंट बाद लौटे। उनके साथ एक नवयुवक था, जिसकी आयु पच्चीस-छब्बीस वर्ष के लगभग होगी। मुनीमजी तथा नवयुवक दोनों सेठजी के पलंग के पास बैठ गए।

सेठजी कुछ देर तक आँखें बन्द किए पड़े रहे। तत्पश्चात् आंखें खोल कर बोले—"बेटा चुन्नू!"

नवयुवक—"हाँ पिताजी!"

सेठजी—"मैं तो अब दो ही चार दिन का मेहमान हूं।"

चुन्नू—"आप भी क्या बातें किया करते हैं? आप अवश्य अच्छे हो जायंगे। कल डाक्टर साहब कहते थे कि अभी कोई

बात नहीं बिगड़ी। आप यों ही ऐसी बातें सोच-सोचकर तबीयत परेशान किया करते हैं।"

सेठजी ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया, आंखें बन्द किए पड़े रहे। कुछ देर बाद उन्होंने आंखें खोलकर कहा—"खैर, जो मैं अच्छा हो गया, तब तो कोई बात ही नहीं, और यदि मैं चल ही बसा— "

चुन्नू—"यह आप क्या—"

सेठजी हाथ के इशारे से पुत्र को रोककर बोले—"पहले मेरी सब बातें सुन लो, फिर जो जी चाहे कह लेना। हां, तो यदि मैं चल ही बसा, तो अपने पीछे तुम्हारे लिये अपने स्थान पर मुनीम जी को छोड़ता हूं।"

चुन्नूमल ने कुछ चौंककर मुनीमजी की ओर देखा। मुनीमजी भी कुछ घबरा से गए।

सेठजी—"जो वेतन इन्हें अब दिया जाता है, वह सदैव दिए जाना—चाहे यह काम करें, या न करें। जब कोई बड़ा काम करना, या ऐसा काम करना, जो भली भांति तुम्हारा समझा हुआ न हो, तब पहले मुनीमजी से सलाह ले लेना और जैसा यह कहें, वैसा ही करना।

चुन्नूमल आँखें फाड़-फाड़कर मुनीमजी की ओर देखते जाते थे और पिता की बातें सुन रहे थे। मुनीमजी चुपचाप सिर झुकाए बैठे थे।

सेठजी कुछ देर दम लेने के बाद बोले—"बस, तुम्हारे लिये मेरी यह अंतिम आज्ञा है। मुझे और किसी संबन्ध में कुछ नहीं कहना। तुम स्वयं समझदार हो; जो उचित समझना, करना।"

सेठजी ने फिर कुछ देर दम लिया। तत्पश्चात् बोले—"मुनीमजी! आपसे मुझे कुछ नहीं कहना। मुझे विश्वास है, जो व्यवहार आप मेरे साथ करते आए हैं, वही चुन्नू से भी करते रहेंगे, वरन् उससे अधिक ही करेंगे। कारण, आप इसे सदैव पुत्रवत् समझते रहे हैं।"

मुनीमजी ने सेठजी की बात का कोई उत्तर न दिया। सेठ जी ने मुनीमजी की ओर देखा। वृद्ध मुनीम की आँखों से आंसुओं की छोटी-छोटी बूंदें निकलकर उनके झुर्रियां पड़े हुए गालों पर बह रही थीं। जान पड़ता है, सेठजी को उन बूंदों ही के द्वारा अपनी बात का उत्तर मिल गया, क्योंकि उन्होंने कुछ प्रसन्न मुख होकर दूसरी ओर करवट बदल ली।

(२)

सेठजी का स्वर्गवास हुए तीन महीने बीत गए। सेठ चुन्नूमल, अपने पिता के एक-मात्र पुत्र होने के कारण, सारे कारोबार के मालिक हुए वृद्ध मुनीम मटरूमल जिस प्रकार बड़े सेठजी का काम करते थे, उसी प्रकार छोटे सेठ चुन्नूमल का काम-काज करने लगे। कार्य-भार हाथ में लेने के पश्चात् दो महीने तक तो चुन्नूमल और मुनीमजी में खूब पटी, परन्तु फिर क्रमशः चुन्नूमल

को मुनीमजी काँटे की तरह खटकने लगे। इसका कारण यह था कि चुन्नूमल नवयुवक होने के कारण संसार की गति से अनभिज्ञ थे। अतएव उलटी-सीधी, जो मन में आती थी, करने के लिये तैयार हो जाते थे। परन्तु मुनीम जी यथाशक्ति उन्हें रोकते थे। मुनीमजी की बात मान तो लेते थे, पर उन्हें मुनीमजी का हस्तक्षेप करना बहुत बुरा लगता था। प्रायः मुनीमजी उन्हें डाँट भी दिया करते थे। मुनीमजी की डांट से चुन्नूमल का गरम लहू उबलने लगता था, परन्तु कुछ तो पिता के अन्तिम वाक्य याद करके, और कुछ इस कारण से कि वह बाल्यावस्था से मुनीमजी के शासन में रहने के अभ्यस्त थे, उन्हें कुछ अधिक कहने-सुनने और मुनीमजी की बात को न मानने का साहस नहीं होता था।

एक दिन चुन्नूमल अपने कुछ मित्रों के साथ बाहर घूमने के लिये जाने की इच्छा की। उन दिनों काम का बड़ा जोर था, अतएव मुनीमजी ने कहा—"इस समय आपका बाहर जाना ठीक नहीं है। पंद्रह-बीस दिन रुक जाइए। जब काम कुछ हलका हो, तब चले जाइएगा। मुझमें इतनी शक्ति नहीं कि मैं सारे काम-काज की देख-भाल कर सकूं। नौकरों के भरोसे इतना बड़ा काम छोड़ देना भी ठीक नहीं।"

चुन्नूमल नाक-भौं सिकोड़कर बोले—"मैं क्या नौकरों के पीछे-पीछे घूमा करता हूं? आखिर मेरे रहने पर भी तो वे ही काम करते हैं।"

मुनीमजी—"यह ठीक है, पर मालिक के पास रहने से

नौकरों को खटका रहता है और वे कोई गड़बड़ नहीं कर सकते। जब मालिक नहीं होता, तब उनको कोई डर नहीं रहता, वे मन-माना काम करते हैं।"

चुन्नूमल—"यह कुछ नहीं। मैं मित्रों से चलने का पक्का वादा कर चुका हूं, इसलिये अवश्य जाऊंगा।"

मुनीमजी कुछ अप्रसन्न होकर बोले—मैं आपको इस समय नहीं जाने दूंगा। मित्रों को कहने दीजिए। आदमी को अपना बनता-बिगड़ता देखना चाहिए, मित्र तो कहा ही करते हैं।"

चुन्नूमल मुनीमजी को अप्रसन्न होते देख चुप तो रहे, परन्तु उन्हें उन पर बड़ा क्रोध आया।

उसी दिन शाम को मित्रों से साक्षात् होने पर चुन्नूमल ने कहा—"भई, मैं तो इस समय आप लोगों के साथ नहीं चल सकता।"

एक मित्र बोला—"क्यों ?"

चुन्नूमल—"मुनीमजी कहते हैं—इस समय काम अधिक है, मेरा जाना ठीक नहीं।"

दूसरा—"और तुम उस बुड्ढे खूसट की बातों में आ गए ?"

चुन्नू—"क्या करूं, अधिक कुछ कहता हूं, तो वह अप्रसन्न होते हैं।"

पहला—"अप्रसन्न होते हैं, तो होने दो। वह हैं कौन ? नौकर लाख कुछ हो, फिर नौकर ही है।"

चुन्नू—"यह तो ठीक है, परन्तु—"

तीसरा—"यार, तुम खुद दब्बू हो, नहीं तो एक नौकर की क्या मजाल है, जो मालिक पर-दबाव डाले।"

दूसरा—"बात सच्ची तो यह है कि कहने को तो तुम स्वतन्त्र हो गये, पर अब भी उतने ही परतन्त्र हो, जितते बड़े सेठजी के समय में थे। तुम कुछ बबुआ तो हो नहीं, जो अपना बनता-बिगड़ता न समझो।"

तीसरा—"अरे यार, यह बुड्ढ़ा बड़ा चलता हुआ है। यह चाहता है कि तुम इसकी मुट्ठी में रहो, जितना पानी पिलावे, उतना ही पियो।"

पहला—"सचमुच तुम्हारे लिये यह बड़ी लज्जा की बात है।"

इस प्रकार सब मित्रों ने मिलकर चुन्नूमल को ऐसा पानी चढ़ाया कि उन्होंने यह ठान ली कि चाहे जो कुछ हो, परन्तु अब मुनीमजी के शासन में नहीं रहेंगे।

दूसरे दिन सवेरे चुन्नूमल मित्रों के साथ जाने की तैयारी करने लगे। मुनीमजी को जो इस बात का पता लगा, तो वहा बड़े कुंठित हुए और चुन्नूमल से बोले—"आखिर आपने मेर कहना न माना और जाने की तैयारी कर ही दी।"

चुन्नूमल एक तो खुद ही मुनीमजी से तंग आ गए थे, दूसरे मित्रों ने भी उन्हें खूब भर दिया था। वह मुनीम जी का तिरस्कार करने के लिए तैयार होकर बैठे थे, अतएव उन्होंने छूटते ही

कहा—"आप होते कौन हैं, जो आपकी बात मानूं ? मैं तो केवल इसलिये कि आप पुराने हैं, और पिता जी भी आपसे सलाह-बलाह ले लेने के लिए कह गए थे, आपका आदर करता हूं, और आप सिर पर ही चढ़े जाते हैं। क्या आप चाहते है कि मैं सोलहों आने आप ही के कहने पर चलूं ?

मुनीमजी इस उत्तर के लिये तैयार न थे। वह चुन्नूमल के मुंह से—उस चुन्नू के मुंह से—जिसे उन्होंने गोदियों में खिलाया था, जिसे उन्होंने लिखा-पढ़ाकर व्यापार-कला में दक्ष किया था—यह उत्तर सुनकर स्तंभित रह गए। उन्हें कभी स्वप्न में भी इस उत्तर की आशा न थी। बड़ी देर तक वह सन्नाटे में खड़े चुन्नूमल का मुंह ताकते और यह सोचते रहे कि आज वह दिन आ गया, जिसकी कल्पना-मात्र से उनका हृदय दहला करता था। अंत को वह संभलकर कुछ नम्र स्वर में बोला—"खैर, आप चाहे जो समझें, और मेरी बातों का चाहे जो अर्थ लगावें, परन्तु मैं जब तक यहां बैठा हूँ, तब तक उस काम के लिये सदैव रोकता रहूँगा, जिसे अनुचित समझता हूं। मुझसे यह नहीं हो सकता कि चाहे बने या बिगड़े, मैं चुपचाप बैठा-बैठा देखा करूं।"

चुन्नूमल गंभीरता पूर्वक बोले—"यदि आपसे नहीं देखा जाता, तो आप अपने घर बैठें।"

चुन्नूमल के इस वाक्य से मुनीमजी का रहा-सहा आशा-सूत्र भी छिन्न-भिन्न हो गया। उनके हृदय पर चोट लगी। इधर आत्मगौरव और स्वाभिमान ने भी हृदय पर दबाव डाला। उन्हों

ने सिर झुकाकर धीरे से कहा—"अच्छा, यदि आपकी यही इच्छा है, तो ऐसा ही होगा।"

चुन्नूमल मुनीमजी की इस बात से मन-ही-मन प्रसन्न हुए। उन्होंने समझा—"चलो अच्छा हुआ, 'आंख फूटी, पीर गई'।"

(३)

मुनीमजी ने चुन्नूमल के यहाँ जाना बन्द कर दिया। कुछ लोगों ने, जो मुनीम जी और चुन्नूमल दोनों के शुभचिन्तक थे, मुनीमजी को समझाया कि जाने दीजिए, बच्चा है, उसकी बात का बुरा न मानिए। आप अपने स्वामी—बड़े सेठजी—की बात का स्मरण कीजिए। परन्तु मुनीमजी ने इसका उत्तर दिया—"मैं केवल अपने स्वामी की बात पर, उनके पश्चात् भी, उनके घर को अपना घर समझता रहा और सदैव समझता रहता। मैं चुन्नू की सब बातें सह सकता था, परंतु जब उसने मुझसे साफ-साफ कह दिया कि 'घर बैठो', तब रह क्या गया ? मेरा हृदय इसे स्वीकार नहीं करता कि मैं अब वहां जाऊं। जौहर का परखने वाला जौहरी मेरा स्वामी था ; जब वह ही उठ गया, तो अब किस के पास आऊं-जाऊं ?"

लोगों ने चुन्नू को भी बहुत समझाना-बुझाना कि तुम अपने दुर्व्यवहार के लिये मुनीम जी से क्षमा माँगो; और उन्हें मना-मनूकर राज़ी करो। परन्तु समझाने वालों की अपेक्षा भड़काने वाले अधिक थे। अतएव चुन्नूमल ने इस बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया। उन्होंने केवल इतना किया कि मुनीमजी को

पेंशन के तौर पर कुछ मासिक देना चाहा, परन्तु मुनीमजी ने एक पैसा तक लेना स्वीकार न किया। उन्होंने कह दिया—"मैं कभी चुन्नूमल का नौकर नहीं रहा। जिसका नौकर था, उसका था। मैं चुन्नूमल का एक पैसा भी नहीं ले सकता।"

इस प्रकार चुन्नूमल पर जो थोड़-बहुत अंकुश था, वह भी दूर हो गया। अब चुन्नूमल पूर्ण स्वतन्त्र हो गए। स्वतन्त्र होने से विलासिताप्रिय चुन्नूमल के खर्च बढ़ गए। उन्होंने अपने कारोबार पर भी उचित ध्यान देना छोड़ दिया। सब काम प्रायः नौकरों ही के भरोसे पर होने लगा। साल-डेढ़ साल इसी प्रकार काम चला। उनके कारोबार की इमारत बहुत बड़ी थी और उस की नींव कमज़ोर हो गई थी। समय के चक्र ने उलटफेर करके स्थिति का रंग बदल दिया। चुन्नूमल की लापरवाही अन्त में वह दिन ले ही आई, जिससे सेठ छंगामल का फर्म डगमगाने लगा। दो लाख की एक हुंडी का भुगतान था। चुन्नूमल को उसका स्मरण ही न था, न उनके नौकरों और मुनीमों ने ही उसपर कुछ ध्यान रक्खा। जिस समय आदमी हुंडी लेकर दूकान पर आया और उसने हुंडी का भुगतान माँगा, उस समय चुन्नूमल की आंखें खुलीं। उस समय उनके पास केवल पचास हज़ार रुपये ही तैयार थे। इसमें संदेह नहीं कि यदि दो-चार दिन पहले उन्हें उस भुगतान का ध्यान आ जाता, तो दो लाख क्या, चार-छः लाख का भुगतान भी दिया जा सकता था। परन्तु दो-चार दिन पहले तो क्या, चुन्नूमल को एक घण्टा पहले तक भी उसका ध्यान न

आया। अब यदि भुगतान तुरन्त नहीं दिया जाता, तो फर्म दिवालिया हुआ जाता है। यह एक ऐसी बात थी, जिससे चुन्नूमल जैसे लापरवाह का भी कलेजा हिल गया। उनके हाथ-पैर फूल गए, आंखों-तले अंधेरा छा गया। उन्होंने तुरन्त दो-चार जगह, जहां उनका व्यवहार रहता था; रुपये के लिये आदमी दौड़ाए। परन्तु डेढ़ लाख की रकम सहज में मिल जाना कोई खेल नहीं था। इसके अतिरिक्त लोग चुन्नूमल की दशा देखकर उनके फर्म से खटक गए थे। अतएव जो दे सकते थे, उन्होंने भी इनकार कर दिया। यह स्थिति देखकर चन्नूमल ने अपने मुनीमों से परामर्श किया कि अब क्या किया जाय। इतना बड़ा फर्म दिवालिया हुआ जाता है, सेठ छंगामल की सारी कीर्ति धूल में मिली जाती है।

उनके प्रधान मुनीम ने कहा—"हम क्या बतावें? जैसा आप उचित समझें, करें।"

चुन्नूमल रुआसे-से होकर बोले—"तुम लोगों की लापरवाही से ही यह दिन देखना पड़ा। शोक! यदि मटरूमल होते, तो क्या ऐसी स्थिति होने पाती? वह दस दिन पहले ही से प्रबन्ध कर रखते।"

मुनीम—"इधर आपने भी काम की ओर बिल्कुल ध्यान न रक्खा। हम लोग किस-किस बात का ध्यान रक्खें? एक हो, दो हों, तो ध्यान रह भी सकता है।"

इधर भुगतान लेने वाले ने कहा—"क्यों साहब, क्या देर-दार है? हुंडी का भुगतान दीजिए।"

चुन्नूमल भीतर बैठे हुए मुनीमों से झगड़ रहे थे। आदमी ने जाकर उनसे यह बात कही।

चुन्नूमल ने आदमी से कहा—"कह दो—अभी भुगतान होता है, घबराओ नहीं।"

आदमी को तो यह कहकर टाल दिया, और इधर मुनीम से बोले—"अब क्या किया जाय, कुछ तो बताओ ?"

मुनीम बोला—"मेरी समझ में यदि मटरूमलजी आवें, तो वह कोई-न कोई युक्ति निकाल ही लेंगे।"

चुन्नूमल को भी यह बात जँच गई। बोले—"अच्छा, तो जाओ, उन्हें बुला लाओ।"

मुनीम—"मेरे या किसी और के बुलाए से तो वह कभी न आवेंगे। इस समय यदि आप ही जायं, तो वह आ सकते हैं।"

चुन्नूमल ने सिर झुका कर कहा—"मुझे जाना पड़ेगा ?"

यद्यपि चुन्नूमल को बहुत कुछ आशा थी कि मटरूमल के आने पर इस विपत्ति से छुटकारा होने की संभावना है, परन्तु फिर भी उनका हृदय मटरूमल के पास जाने में पीछे हटता था।

मुनीम—"आपको जाना ही पड़ेगा। न जाइएगा, तो क्या दिवालिया बनिएगा ?"

चुन्नूमल—"अच्छा, मैं जाता हूँ। तुम उस आदमी से कह दो कि बड़े मुनीमजी को बुलवाया है, उनके आने पर भुगतान दिया जायगा।"

यह कहकर चुन्नूमल ने उसी समय गाड़ी जुतवाई और मुनीमजी के मकान की ओर चले। रास्ते में वह सोचते जाते थे कि क्या मुँह लेकर उनके सामने जाता हूँ। क्या वह चले आवेंगे? इसी प्रकार सोचते हुए चुन्नूमल मुनीमजी के मकान पर पहुंचे। जाड़े के दिन थे। शाम हो चुकी थी। मटरूमल दुलाई ओढ़े, बैठे हुक्का पी रहे थे। उनके नौकर ने आकर कहा—"मुनीमजी, सेठ चुन्नूमल आप से मिलने आए हैं।"

मुनीमजी चौंक पड़े। बोले—"ऐं! चुन्नूमल?"

नौकर—"जी हां, चुन्नूमल।"

मुनीम जी कुछ देर तक सन्नाटे में बैठे रहे। तत्पश्चात् बोले—"अच्छा, बुला लाओ।"

चुन्नूमल सकुचाते हुए मटरूमल के सामने आए, और आते ही उन के पैरों पर गिरकर रोने लगे। मटरूमल चुन्नूमल की यह दशा देख पहले बड़े आश्चर्यान्वित हुए; परन्तु साथ ही यह समझकर कि इन पर इस समय कोई बड़ी विपत्ति आई हुई है, इसीलिये इनकी यह दशा है, उन्होंने सप्रेम चुन्नूमल का सिर ऊपर उठाया और कहा—"क्यों बेटा, क्या बात है? इतने घबराए हुए क्यों हो?"

चुन्नूमल ने समस्त वृत्तांत कह सुनाया और फिर कहा—"इस समय आप ही की सहायता से हमारी नाव इस भंवर से निकल सकती है।"

मटरूमल भी यह स्थिति सुनकर घबरा गए और बोले—

"इस दशा में मैं क्या कर सकता हूं ? मेरे यहां रुपया होता, तो मैं उठा देता। और, जो कुछ है, वह तुम्हारा ही है। तुम्हारा उससे काम चले, तो ले जाओ।"

चुन्नूमल –"मैं रुपया-उपया कुछ नहीं जानता। किसी तरह एक या दो दिन के लिये यह अवसर टाल दीजिए। फिर तो दो लाख क्या, मैं दस लाख का प्रबन्ध कर लूंगा।"

मटरूमल चुन्नूमल की दशा देख और उनकी विपत्ति का हाल सुनकर विचार करने में ऐसे मग्न हो गए कि उन्हें यह ध्यान ही न आया कि यह वही चुन्नूमल हैं, जिसने उन्हें 'घर बैठने' के लिये कह दिया था।

मटरूमल बड़ी देर तक विचार करते रहे। तत्पश्चात् बोले—'अच्छा चलो'। यह कहकर वह केवल दुलाई ओढ़े वैसे ही उठ खड़े हुए। रास्ते में चुन्नूमल मटरूमल की शांतचित्तता पर विस्मित होकर सोचने लगे—"आखिर यह करेंगे क्या ? भुगतान तो रुपये से होगा। यह वहां क्या करेंगे ? यह तो ऐसे निश्चिंत हैं, मानो कोई बात ही नहीं हुई।"

इसी प्रकार सोचते हुए चुन्नूमल मटरूमल के साथ अपने यहां पहुंचे। मटरूमल ने गद्दी पर पहुंचते ही कहा—"भाई, मैं जल्दी में चला आया, कुछ कपड़ा भी नहीं पहना। ज़रा एक अंगीठी में कोयले दहकाकर ले आओ। हाथ-पैर ठिठुर गए।" यह कहकर वह गद्दी पर बैठ गए।

चुन्नूमल ने उनके सामने हुंडी रखी और बोले—"देखिए,

इस हुंडी का भुगतान करना है ।"

मटरूमल बोले—"भाई, ज़रा उंगलियां सीधी कर लूं, तो देखूं । जाड़े के मारे उंगलियाँ तो सीधी ही नहीं होतीं ।"

कुछ देर बाद दहकती हुई अंगीठी मटरूमल के सामने आई । मटरूमल कुछ देर तक उसमें हाथ सेकने के बाद बोले—"हाँ भई, अब लाओ हुंडी, देखूं । बुढ़ापे में शरीर की दुर्दशा हो जाती है । मेरे तो हाथ भी अब कांपने लगे ।"

यह कहकर उन्होंने हुंडी हाथ में ले ली । उसे आंखों के सामने लाए । हाथों के ठीक नीचे अंगीठी थी । अकस्मात् उनके हाथ थर्राए, और हुंडी हाथ से छूटकर अंगीठी में जा गिरी । जब तक लोगों का ध्यान उसकी ओर जाय-जाय, तब तक वह जलकर राख हो गई ।

भुगतान मांगने वाले के चेहरे का रंग उड़ गया । इधर चुन्नूमल का चेहरा मारे प्रसन्नता के खिल उठा ।

मटरूमल किसी के कुछ बोलने के पहले ही बोल उठे—"क्या कहूँ, हाथ ऐसे काँपे कि हुंडी संभली ही नहीं । खैर, कोई चिंता नहीं । (भुगतान लेनेवाले से) तुम हुंडी की नकल लाओ, और भुगतानान ले जाओ । अभी ले आओ, अभी भुगतान मिल जाय ।"

भुगतान लेने वाला जल-भुनकर बोला—"नकल क्या मेरे पास धरी है । जब मंगाई जायगी, तब आवेगी । नकल मंगाने में तीन-चार दिन लग जायँगे ।

मटरूमल—"तो भाई, मैं इस में क्या करूं ? समय की

बात है, हाथ काँप गया। बुड्ढा आदमी ठहरा। परन्तु इससे क्या ? तुम्हारा भुगतान तो रह ही न जायगा।"

भुगतान लेनेवाला बोला—"भुगतान भला क्या रह सकता है ? पर तीन-चार दिन का झमेला तो लग गया।"

मटरूमल—"अब तो लग ही गया, क्या किया जाय ?"

भुगतान लेनेवाला उठ खड़ा हुआ और बोला—"अच्छा, नकल आ जाने पर भुगतान ले जाऊंगा।"

यह कहकर वह चला गया।

उसके जाते ही चुन्नूमल मटरूमल के पैरों पर गिर पड़े, और बोले—"धन्य है आपको। मैंने आपको उस समय नहीं पहचाना था। इसीलिये पिताजी आपका इतना आदर करते थे और अन्त समय मुझे वह आज्ञा दे गए थे।"

अब मटरूमल को ध्यान आया कि उनके सामने, वही चुन्नूमल है, जिसने उनसे घर बैठने के लिये कहा था। वह तुरन्त उठ खड़े हुए और बोले—"यह सब ठीक है, पर मुझे तुम्हारे वे घर बैठने वाले वाक्य अभी याद हैं, और अब मैं यहाँ एक क्षण भी नहीं ठहर सकता।"

यह कहकर और शीघ्रता-पूर्वक जूता पहन कर वह वहां से चल खड़े हुए।



[५]

बड़े घर की बेटी

(स्व० श्री प्रेमचन्द)

(१)

बेनीमाधवसिंह गौरीपुर गांव के ज़मींदार और नम्बरदार थे। उनके पितामह किसी समय बड़े धनधान्य-सम्पन्न थे। गांव का पक्का तालाब और मन्दिर, जिनकी अब मरम्मत भी मुश्किल थी, उन्हीं के कीर्तिस्तम्भ थे। कहते हैं, इस दरवाज़े पर हाथी झूमता था, अब उसकी जगय एक बूढ़ी भैंस थी, जिसके शरीर में पंजर के सिवा और कुछ शेष न रहा था, पर दूध शायद बहुत देती थी क्योंकि एक-न-एक आदमी हाँडी लिये उसके सिर पर सवार ही रहता था। बेनीमाधवसिंह अपनी आधी से अधिक

सम्पत्ति वकीलों की भेंट कर चुके थे। उनकी वर्तमान वार्षिक आय एक हज़ार से अधिक न थी। ठाकुर साहब के दो बेटे थे। बड़े का नाम श्रीकण्ठसिंह था उन्होंने बहुत दिनों के परिश्रम और उद्योग के बाद बी० ए० की डिग्री प्राप्त की थी। अब एक दफ्तर में नौकर थे। छोटा लड़का लालबिहारीसिंह दोहरे बदन का सजीला जवान था। मुखड़ा भरा हुआ, चौड़ी छाती, भैंस का दो सेर ताज़ा दूध वह सवेरे पी जाता था। श्रीकण्ठसिंह की दशा उसके बिल्कुल विपरीत थी। इन नेत्र प्रिय गुणों को उन्होंने इन्हीं दो अक्षरों पर न्योछावर कर दिया था। इन दो अक्षरों ने उनके शरीर को निर्बल और चेहरे को कान्तिहीन बना दिया था। इसी से वैद्यक ग्रन्थों पर उनका विशेष प्रेम था। आयुर्वैदिक औषधियों पर उनका अधिक विश्वास था। सांझ-सवेरे उनके कमरे से प्रायः खरल की कर्णमधुर ध्वनि सुनाई दिया करती थी। लाहौर और कलकत्ते के वैद्यों से बड़ी लिखा पढ़ी रहती थी।

श्रीकण्ठ इस अंग्रेज़ी डिग्री के अधिपति होने पर भी अंग्रेज़ी सामाजिक प्रथाओं के विशेष प्रेमी न थे, बल्कि वह बहुधा बड़े ज़ोर से उनकी निन्दा और तिरस्कार किया करते थे। इसी से गाँव में उनका सन्मान था। दशहरे के दिनों में वह बड़े उत्साह से रामलीला में सम्मिलित होते और स्वयं किसी न किसी पात्र का पार्ट लेते। गौरीपुर में रामलीला के वही जन्मदाता थे। प्राचीन हिन्दू-सभ्यता का गुण-गान उनकी धार्मिकता का प्रधान अङ्ग था। आज-कल स्त्रियों की कुटुम्ब में मिल जुल कर रहने की ओर जो अरुचि होती है, उसे वह जाति और देश के लिए बहुत ही हानिकर

समझते थे। यही कारण था कि गाँव की ललनाएं उनकी निन्दक थीं। कोई कोई तो उन्हें अपना शत्रु समझने में भी संकोच न करती थीं, स्वयं उनकी पत्नी को ही इस विषय में उनसे विरोध था। वह इस लिए नहीं कि उसे अपने सास, ससुर, देवर, जेठ से घृणा थी, बल्कि उसका विचार था कि यदि बहुत कुछ सहन करने और तरह देने पर भी परिवार के साथ निर्वाह न हो सके, तो आए दिन के कलह से जीवन को नष्ट करने की अपेक्षा उत्तम है कि अपनी खिचड़ी अलग पकाई जाय।

आनन्दी एक बड़े उच्च-कुल की लड़की थी। उसके बाप एक छोटी सी रियासत के ताल्लुकेदार थे। विशाल भवन, एक हाथी, तीन कुत्ते, बाज़, बहरी, सिकरे, झाड़ फ़ानूस, आनरेरी मजिस्ट्रेटी और ऋण, जो एक प्रतिष्ठित ताल्लुकेदार के योग्य पदार्थ हैं, वे सभी उनके यहां विद्यमान थे। भूपसिंह नाम था। बड़े उदारचित्त प्रतिभाशाली पुरुष थे; पर दुर्भाग्य, लड़का एक भी न था। सात लड़कियां हुईं और दैव योग से सब-की-सब जीवित रहीं। पहली उमङ्ग में तो उन्होंने तीन ब्याह दिल खोलकर किए; पर जब पन्द्रह बीस हज़ार का कर्ज़ सिर पर हो गया, तो आंखें खुलीं, हाथ समेट लिया। आनन्दी चौथी लड़की थी। वह अपनी सब बहनों से अधिक रूपवती और गुण शीला थी। इसी से ठाकुर भूपसिंह उसे बहुत प्यार करते थे। सुन्दर सन्तान को कदाचित् उसके माता पिता भी अधिक चाहते हैं। ठाकुर साहब बड़े धर्म-संकट में थे कि इसका विवाह कहां करें। न तो यही चाहते थे कि ऋण का बोझ बढ़े और न यह स्वीकार था कि इसे अपने को भाग्यहीन समझना पड़े। एक दिन श्रीकण्ठ उनके पास किसी चन्दे

का रुपया मांगने आये। शायद नागरी-प्रचार का चन्दा था। भूपसिंह उसके स्वभाव पर रीझ गए और धूम-धाम से श्रीकण्ठ-सिंह का आनन्दी के साथ विवाह हो गया।

आनन्दी अपने नये घर में आई, तो यहां का रंग-ढङ्ग कुछ और ही देखा। जिस टीम टाम की उसे बचपन से ही आदत पड़ी हुई थी, वह वहां नाम मात्र को भी न थी। हाथी घोड़ों का तो कहना ही क्या, कोई सुन्दर सजी बहली तक न थी। रेशमी स्लीपर साथ लाई थी, पर यहां बाग कहां! मकान में खिड़कियां तक न थीं न ज़मीन का फर्श, न दीवार पर तसवीरें। वह एक सीधा-सादा देहाती गृहस्थ का मकान था; किन्तु आनन्दी ने थोड़े ही दिनों में अपने को इस नई अवस्था के ऐसे अनुकूल बना लिया, मानों उसने विलास के सामान कभी देखे ही न थे।

(२)

एक दिन दोपहर के समय लालबिहारीसिंह दो चिड़ियाँ लिए हुए आया और भावज से बोला—"जल्दी से पका दो। मुझे भूख लगी है।" आनन्दी भोजन बना कर उसकी राह देख रही थी। अब यह नया व्यंजन बनाने बैठी। हाँडी में देखा तो घी पाव-भर से अधिक न था। बड़े घर की बेटी किफायत क्या जाने। उसने सब घी माँस में डाल दिया। लालबिहारी खाने बैठा, तो दाल में घी न था, बोला दाल में घी क्यों नहीं छोड़ा?

आनन्दी ने कहा—घी सब मांस में पड़ गया।

लालबिहारी ज़ोर से बोला—अभी परसों घी आया है, इतनी जल्दी उठ गया?

आनन्दी ने उत्तर दिया—आज तो कुल पाव भर रहा होगा। सब मैंने मांस में डाल दिया।

जिस तरह सूखी लकड़ी जल्दी से जल उठती है, उसी तरह क्षुधा से बावला मनुष्य ज़रा-ज़रा सी बात पर तनक जाता है। लालबिहारी को भावज की यह ढिठाई बहुत बुरी मालूम हुई। तनक कर बोला—मैके में तो चाहे घी की नदी बहती हो?

स्त्री गालियाँ सह लेती हैं, मार भी सह लेती हैं, मैके की निन्दा उनसे नहीं सुनी जाती। आनन्दी मुंह फेर कर बोली—हाथी मरा भी तो नौ लाख का, वहाँ इतना घी नित्य नाई कहार खा जाते हैं।

लालबिहारी जल गया, थाली उठाकर पटक दी और बोला—जी चाहता है, जीभ पकड़ कर खींच लूं।

आनन्दी को भी क्रोध आया। मुंह लाल हो गया, बोली—वह होते तो आज इसका मज़ा चखा देते।

अब अपढ़, उजड्ड ठाकुर से न रहा गया। उसकी स्त्री एक साधारण ज़मींदार की बेटी थी। जब जी चाहता, उस पर हाथ साफ कर लिया करता था। उसने खड़ाऊं उठाकर आनन्दी की ओर ज़ोर से फेंकी और बोला—जिसके गुमान पर भूली हुई हो उसे भी देखूंगा और तुम्हें भी।

आनन्दी ने हाथ से खड़ाऊं रोकी, सिर बच गया; पर अंगुली में कड़ी चोट आई। क्रोध के मारे हवा से हिलते हुए पत्ते की भांति काँपती हुई अपने कमरे में आकर खड़ी हो गई। स्त्री

का बल और साहस, मान और मर्यादा पति तक है। उसे अपने पति के ही बल और पुरुषत्व का घमण्ड होता है। आनन्दी लहू का घूंट पीकर रह गई।

(३)

श्रीकण्ठसिंह शनिवार को घर आया करते थे। वृहस्पति को यह घटना हुई थी। दो दिन तक आनन्दी कोपभवन में रही न कुछ खाया, न पिया, उनकी बाट देखती रही। अन्त में शनिवार को वह नियमानुकूल सन्ध्या समय घर आये और बाहर बैठकर कुछ इधर-उधर की बातें, कुछ देश और काल सम्बन्धी समाचारों तथा कुछ नये मुकदमों आदि की चर्चा करने लगे। यह वार्तालाप दस बजे रात तक होता रहा। गांव के भद्र पुरुषों को इन बातों में ऐसा आनन्द मिलता था कि खाने-पीने की भी सुधि न रहती थी। श्रीकण्ठ को पिण्ड छुड़ाना मुश्किल हो जाता था दो तीन घंटे आनन्दी ने बड़े कष्ट से काटे। किसी तरह भोजन का समय आया। पंचायत उठी। जब एकान्त हुआ, तब लालबिहारी ने कहा—भैया, आप ज़रा घर में समझा दीजिएगा कि मुंह संभालकर बात-चीत किया करें, नहीं तो एक दिन अनर्थ हो जायगा

बेनीमाधवसिंह ने बेटे की ओर से साक्षी दी—हां बहू-बेटियों का यह स्वाभव अच्छा नहीं कि पुरुषों के मुंह लगें।

लालबिहारी—वह बड़े घर की बेटी है तो हम लोग भी कोई कुर्मी कहार नहीं हैं।

श्रीकण्ठ ने चिन्तित स्वरसे पूछा—आखिर बात क्या हुई ?

लालविहारी ने कहा—कुछ भी नहीं, यों ही आप ही आप उलझ पड़ी। मैके के सामने हम लोगों को कुछ समझती ही नहीं।

श्रीकण्ठ खा-पीकर आनन्दी के पास गए। वह भरी बैठी थी। यह हज़रत भी कुछ तीखे थे। आनन्दी ने पूछा—चित्त तो प्रसन्न है ?

श्रीकण्ठ बोले—बहुत प्रसन्न है; पर तुमने आज-कल घर में यह क्या उपद्रव मचा रखा है ?

आनन्दी की तेवरियों पर बल पड़ गए और झुंझलाहट के मारे बदन में ज्वाला सी दहक उठी। बोली जिसने तुमसे यह आग लगाई है, उसे पाऊं तो उसका मुंह झुलस दूं।

श्रीकण्ठ—इतनी गरम क्यों होती हो ? बात तो कहो।

आनन्दी—क्या कहूं, यह मेरे भाग्य का फेर है। नहीं तो एक गंवार छोकरा, जिसको चपरासगिरी करने का भी ढङ्ग नहीं, मुझे खड़ाऊं से मार कर यों न अकड़ता।

श्रीकण्ठ—सब साफ-साफ हाल कहो तो मालूम हो। मुझे तो कुछ भी पता नहीं।

आनन्दी—परसों तुम्हारे लाड़ले भाई ने मुझ से माँस पकाने को कहा। घी हांडी में पाव भर से अधिक न था। वह मैंने सब माँस में डाल दिया। जब खाने बैठा तो कहने लगा, दाल में घी क्यों नहीं है ? बस इसी पर मेरे मैके को भला-बुरा कहने

लगा। मुझ से न रहा गया। मैंने कहा कि वहां इतना घी तो नाई कहार खा जाते हैं और किसी को जान भी नहीं पड़ता। बस इतनी सी बात पर इस अन्यायी ने मुझ पर खड़ाऊं फेंक मारी। यदि हाथ से न रोक लेती तो सिर फट जाता। उसी से पूछो कि मैंने जो कुछ कहा है, वह सच है या झूठ?

श्रीकण्ठ की आंखें लाल हो गईं। बोले—यहाँ तक हो गया! इस छोकरे का यह साहस!

आनन्दी स्त्रियों के स्वभावानुसार रोने लगी, क्योंकि आंसु उनकी पलकों पर रहते हैं। श्रीकण्ठ बड़े धैर्यवान और शान्त पुरुष थे। उन्हें कदाचित् ही क्रोध आता था। पर स्त्रियों के आंसू पुरुषों की क्रोधाग्नि भड़काने में तेल का काम देते हैं। रात-भर करवटें बदलते रहे। उद्विग्नता के कारण पलक तक नहीं झपकी। प्रातःकाल अपने बाप के पास जाकर बोले—दादा, अब इस घर में मेरा निर्वाह न होगा।

इस तरह की विद्रोह-पूर्ण बातें करने पर श्रीकण्ठ ने कितनी ही बार अपने कई मित्रों को आड़े हाथों लिया था; परन्तु दुर्भाग्य से आज उन्हें स्वयं वही बात अपने मुंह से कहनी पड़ी! दूसरों को उपदेश देना भी कितना सहज है!

बेनीमाधवसिंह घबरा उठे और बोले—क्यों?

श्रीकण्ठ—इसलिए कि मुझे भी अपनी मान-प्रतिष्ठा का कुछ विचार है। आपके घर में अब अन्याय और हठ का प्रकोप हो रहा है। जिनको बड़ों का आदर-सन्मान करना चाहिए, वह

उनके सिर चढ़ते हैं। मैं दूसरे का चाकर ठहरा, घर पर रहता नहीं, यहाँ मेरे पीछे स्त्रियों पर खड़ाऊं और जूतों की बौछारें होती हैं। कड़ी बात तक चिन्ता नहीं, कोई एक की दो कह ले, यहां तक मैं सह सकता हूँ, किन्तु यह कदापि नहीं हो सकता कि मेरे ऊपर लात-घूसे पड़ें और मैं दम न मारूं।

बेनीमाधवसिंह कुछ जवाब न दे सके श्रीकण्ठ सदैव उनका आदर करते थे। उनके ऐसे तेवर देखकर बूढ़े ठाकुर अवाक् रह गए। केवल इतना ही बोले—बेटा, तुम बुद्धिमान् होकर ऐसी बातें करते हो? स्त्रियां इसी तरह घर का नाश कर देती हैं। उन को बहुत सिर चढ़ाना अच्छा नहीं।

श्रीकण्ठ—इतना म जानता हूं, आपके आशीर्वाद से ऐसा मूर्ख नहीं हूं। आप स्वयं जानते हैं कि मेरे ही समझाने बुझाने से इसी गांव में कई घर संभल गए; पर जिस स्त्री की मान-प्रतिष्ठा का मैं ईश्वर के दरबार में उत्तरदायी हूं, उसके साथ ऐसा घोर अन्याय और पशुवत् व्यवहार मुझे असह्य है। आप सच मानिए, मेरे लिए यही कुछ कम नहीं है कि लालबिहारी को दण्ड नहीं देता।

अब बेनीमाधवसिंह भी गरमाये। ऐसी बात और न सुन सके, बोले—लालबिहारी तुम्हारा भाई है, उस से जब कभी भूलचूक हो, उसके कान पकड़ो। लेकिन—

श्रीकण्ठ—लालबिहारी को मैं अब अपना भाई नहीं समझता।

बेनीमाधवसिंह—स्त्री के पीछे ?

श्रीकण्ठ—जी नहीं, उसकी क्रूरता और अविवेक के कारण।

दोनों कुछ देर चुप रहे। ठाकुर साहब लड़के का क्रोध शान्त करना चाहते थे, लेकिन यह नहीं स्वीकार करना चाहते थे कि लालविहारी ने कोई अनुचित काम किया है। इसी बीच में गाँव के और कई सज्जन हुक्के-चिलम के बहाने से वहाँ आ बैठे। कई स्त्रियों ने जब यह सुना कि श्रीकण्ठ पत्नी के पीछे पिता से लड़ने पर तैयार हैं, तो उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। दोनों पक्षों की मधुर वाणियां सुनने के लिये उनकी आत्माएं तिलमिलाने लगीं। गांव में ऐसे कुटिल मनुष्य भी थे, जो इस कुल की नीतिपूर्ण गति पर मन-ही-मन जलते थे। वे कहा करते थे, श्रीकण्ठ अपने बाप से दबता है इसलिये वह दब्बू है, उसने इतनी विद्या पढ़ी, इसलिये वह किताबों का कीड़ा है। बेनीमाधवसिंह उसकी सलाह के बिना कोई काम नहीं करते, यह उनकी मूर्खता है। इन महानुभावों की शुभ कामनाएं आज पूरी होती दिखाई दीं। कोई हुक्का पीने के बहाने और कोई लगान की रसीद दिखाने, आकर बैठ गए। बेनीमाधवसिंह पुराने आदमी थे, इन भावों को ताड़ गए। उन्होंने निश्चय किया कि चाहे कुछ ही क्यों न हो, इन द्रोहियों को ताली बजाने का अवसर न दूंगा। तुरन्त कोमल शब्दों में बोले—बेटा! मैं तुमसे बाहर नहीं हूं। तुम्हारा जो जी चाहे करो, अब तो लड़के से अपराध हो गया।

इलाहाबाद का अनुभव-रहित झल्लाया हुआ ग्रैजुएट इस

बात को न समझ सका। उसे डिबेटिंग क्लब में अपनी बात पर अड़ने की आदत थी, इन हथकण्डों की उसे क्या खबर! बाप ने जिस मतलब से बात पलटी थी, वह उसकी समझ में न आया। बोला—मैं लालबिहारी के साथ अब इस घर में नहीं रह सकता।

बेनीमाधव—बेटा, बुद्धिमान् लोग मूर्खों की बात पर ध्यान नहीं देते। वह बेसमझ लड़का है। उससे जो कुछ भूल हुई है, उसे तुम बड़े होकर क्षमा कर दो।

श्रीकण्ठ—उसकी इस दुष्टता को मैं कदापि नहीं सह सकता। या तो वही घर में रहेगा, या मैं ही रहूँगा। आपको यदि वह अधिक प्यारा है, तो मुझे बिदा कीजिये, मैं अपना भार आप संभाल लूंगा। यदि मुझे रखना चाहते हैं, तो उससे कहिए, जहाँ चाहे चला जाए। बस, यह मेरा अन्तिम निश्चय है।

लालबिहारीसिंह दरवाज़े की चौखट पर चुपचाप खड़ा बड़े भाई की बातें सुन रहा था। वह उनका बहुत आदर करता था। उसे कभी इतना साहस न हुआ था कि श्रीकण्ठ के सामने चारपाई पर बैठ जाय, हुक्का पी ले या पान खा ले। बाप का भी वह इतना मान न करता था। श्रीकण्ठ का भी उस पर हार्दिक स्नेह था। अपने होश में उन्होंने कभी उसे घुड़का भी न था। जब इलाहाबाद से आते, तो उसके लिए कोई न कोई वस्तु अवश्य लाते। मुग्दर की जोड़ी इन्हींने बनवा दी थी। पिछले साल जब उसने अपने से ड्योढ़े जवान को नागपंचमी के दिन दङ्गल में पछाड़ दिया, तो उन्होंने पुलकित होकर अखाड़े में ही जाकर उसे

गले लगा लिया था। पाँच रुपये के पैसे लुटाए थे ऐसे भाई के मुंह से आज ऐसी हृदय-विदारक बात सुनकर लालबिहारी को बड़ी ग्लानि हुई। वह फूट-फूट कर रोने लगा। इसमें सन्देह नहीं कि वह अपने किए पर आप पछता रहा था। भाई के आने से एक दिन पहले से ही उसकी छाती धड़कती थी कि देखूं भैया क्या कहते हैं। मैं उनके सम्मुख कैसे जाऊंगा। उनसे कैसे बोलूंगा ? मेरी आँखें उनके सामने कैसे उठेंगी ? उसने समझा था कि भैया मुझे बुलाकर समझा देंगे। इस आशा के विपरीत आज उसने उन्हें निर्दयता की मूर्ति बने हुए पाया। वह मूर्ख था; परन्तु उसका मन कहता था कि भैया मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं। यदि श्रीकण्ठ उसे अकेले में बुलाकर दो-चार कड़ी बातें कह देते, इतना ही नहीं, दो-चार तमाचे भी लगा देते, तो कदाचित् उसे इतना दुख न होता। पर भाई का यह कहना कि "अब मैं इसकी सूरत नहीं देखना चाहता" लालबिहारी से न सहा गया। वह रोता हुआ घर में आया, कोठरी में आकर कपड़े पहने; आँखें पोंछी; जिससे कोई यह न समझे कि रोता था। तब आनन्दी के द्वार पर आकर बोला--भाभी ! भैया ने निश्चय किया है कि वह मेरे साथ इस घर में न रहेंगे। वह अब मेरा मुंह नहीं देखना चाहते। इस लिये अब मैं जाता हूं, उन्हें मुंह न दिखाऊंगा। मुझसे जो कुछ अपराध हुआ, उसे क्षमा करना।

यह कहते-कहते लालबिहारी का गला भर आया।

(४)

जिस समय लालबिहारीसिंह सिर झुकाये आनन्दी के

द्वार पर पड़ा था, उसी समय श्रीकण्ठसिंह भी आंखें लाल किये बाहर से आये। भाई को खड़ा देखा, तो घृणा से आँखें फेर लीं और कतराकर निकल गये। मानों उसकी परछाईं से भी दूर भागते हैं।

आनन्दी ने लालबिहारी की शिकायत तो की थी, लेकिन अब मन में पछता रही थी। वह स्वभाव से ही दयावती थी। उसे इसका तनिक भी ध्यान न था कि बात इतनी बढ़ जायगी। वह मन में अपने पति पर झुंझला रही थी कि वह इतने गरम क्यों होते जाते हैं। उस पर यह भय भी लगा हुआ था कि कहीं मुझसे इलाहाबाद चलने को कहें, तो कैसे क्या करूंगी? इसी बीच में जब उसने लालबिहारी को दरवाज़े पर खड़ा यह कहते सुना कि "अब मैं जाता हूँ, मुझ से जो कुछ अपराध हुआ है, उसे क्षमा करना" तो उसका रहा-सहा क्रोध भी पानी हो गया। वह रोने लगी। मन का मैल धोने के लिये नयन-जल से उपयुक्त और कोई वस्तु नहीं है।

श्रीकण्ठ को देखकर आनन्दी ने कहा—लाला बाहर खड़े बहुत रो रहे हैं।

श्रीकण्ठ—तो मैं क्या करूं?

आनन्दी—भीतर बुला लो। मेरी जीभ में आग लगे, मैंने कहां से यह झगड़ा उठाया।

श्रीकण्ठ—मैं न बुलाऊंगा।

आनन्दी - पछताओगी। उन्हें बहुत ग्लानि हो गई है, ऐसा न हो कहीं चल दें।

श्रीकण्ठ न उठे। इतने में लालबिहारी ने फिर कहा—भाभी! भैया से मेरा प्रणाम कह दो। वह मेरा मुंह नहीं देखना चाहते, इसलिये मैं भी अपना मुंह उन्हें न दिखाऊंगा।

लालबिहारी इतना कहकर लौट पड़ा, और शीघ्रता से दरवाज़े की ओर बढ़ा। अन्त में आनन्दी कमरे से निकली और उनका हाथ पकड़ लिया। लालबिहारी ने पीछे फिर कर देखा और आंखों में आँसू भरे बोला—मुझे जाने दो।

आनन्दी—कहाँ जाते हो?

लालबिहारी—जहां कोई मेरा मुंह न देखे।

आनन्दी—मैं न जाने दूंगी।

लालबिहारी—मैं तुम लोगों के साथ रहने योग्य नहीं हूं।

आनन्दी—तुम्हें मेरी सौगन्ध, अब एक पग भी आगे न बढ़ाना।

लालबिहारी—जब तक मुझे यह न मालूम हो जाय कि भैया का मन मेरी तरफ से साफ़ हो गया, तब तक मैं इस घर में कदापि न रहूंगा।

आनन्दी—मैं ईश्वर की साक्षी देकर कहती हूँ कि तुम्हारी ओर से मेरे मन में तनिक भी मैल नहीं है।

अब श्रीकण्ठ का हृदय पिघला। उन्होंने बाहर आकर लालबिहारी को गले लगा लिया। दोनों भाई खूब फूट-फूटकर रोये। लालबिहारी ने सिसकते हुए कहा—भैया! अब कभी मत कहियेगा कि तुम्हारा मुंह न देखूंगा। इसके सिवा आप जो दण्ड देंगे, वह मैं सहर्ष स्वीकार करूंगा।

श्रीकण्ठ ने कांपते हुए स्वर से कहा—लल्लू ! इन बातों को बिल्कुल भूल जाओ। ईश्वर चाहेगा, तो अब फिर ऐसा अवसर न आवेगा।

बेनीमाधवसिंह बाहर से आ रहे थे। दोनों भाइयों को गले मिलते देखकर आनन्द से पुलकित हो गए, बोल उठे—बड़े घर की बेटियां ऐसी ही होती हैं, बिगड़ा हुआ काम बना लेती हैं।

गाँव में जिसने यह वृत्तान्त सुना, उसी ने इन शब्दों में आनन्दी की उदारता को सराहा—"बड़े घर की बेटियाँ ऐसी ही होती हैं।"

—:o:—

[६]

नई मां

(कमला त्रिवेणीशंकर)

अन्धकार गाढ़ा हो चला था—दाह-क्रिया से लौटे हुए देवव्रत चुपचाप कुर्सी पर लेटे हुए थे, चलचित्र की भाँति स्वप्न चल रहा था।

धवल कंगूरों से आवेष्टित विशाल अट्टालिका मौन-सी खड़ी रो रही थी, घर के कोने-कोने में सावित्री का अभाव खटक रहा था, अभी-अभी आठ घण्टे पहले वह दुनियां में इस घर में—मौजूद थी, और इस वक्त उसकी आत्मा न जाने कहां होगी ?—उसके बनाये हुए झाड़-फानूस हिल-हिलकर रो रहे थे, दीवारों में भी एक शून्यता आ गई थी। बिजली का तीव्र प्रकाश भी

गृहणी के अभाव में क्षीण हो गया है। उसका नन्हा सतीश कई घण्टे से रोता रोता सो गया है।

देवव्रत ने अपनी उदासी-सी दृष्टि बच्चे के ऊपर डाली—फिर अपने विचारों में विलीन हो गये। घर की एकाकिनी सावित्री ने क्यों उसका साथ छोड़ दिया? पर नहीं – उसकी इच्छा का मूल क्या था, जन्म के दिन से ही मौत निश्चित है। फिर मनुष्य में इतना मोह क्यों? अगर सतीश न होता तो मैं संसार छोड़ देता, लेकिन सावित्री मेरे लिए एक बन्धन छोड़ गई है और वह अमर बन्धन तोड़े नहीं टूट सकता—विचार धारा चलती ही गई; आंख बन्द हो गई। सारा दृश्य उन पलकों के भीतर सीमित हो गया।

सावित्री चौकी पर बैठी किताब पढ़ रही थी, देवव्रत आकर खड़े हो गये, वह धीरे-धीरे मुस्करा पड़ी और किताब अलग रखते हुए बोली—बैठो! उसकी आवाज़ में कितनी स्निग्धता थी, कितना अपना-पन था।

वसन्ती वायु उसके वस्त्रों से अठखेलियां कर रही थी, खिड़की के पास वह पियानो बजा रही थी। देवव्रत ने सतीश को उसकी गोद में डाल दिया, सावित्री क्रोध से तनी, फिर मुस्करा पड़ी—उसके मुख पर कितनी दीप्ति थी।

आज भी सावित्री देवव्रत के पास आकर खड़ी हो गई। कुछ देर असमञ्जस में रही, फिर पति को कन्धा हिलाकर जगा दिया और बोली—तुम इतने उदास हो, देखो! मैं जीवित हूं। तुम्हें और नन्हें को छोड़ कर कहीं रह सकती हूँ? ओह! ओह! मुंह कितना उतर गया है और मेरा सतीश कितना रो चुका है—

चलो तुम भी ज़रा-सी परिहास-परीक्षा में घबरा गये।' सावित्री ने अपने बर्फ जैसे हाथ से पति का हाथ कस कर पकड़ लिया। और अपने कमरे में लिवा ले गई।

ज़रा देर में पिता-पुत्र के रोते हुए चेहरे फिर खिल गये। तीन प्राणियों का नन्हा-सा परिवार फिर मुखरित हो उठा—

देवव्रत ने कुछ स्वस्थ होकर कहा—सावित्री! तुम बहुत रुला चुकी हो, अब एक गाना सुनाओ!'

इसराज की छड़ी उसकी कमल-नाल-सी उँगलियों में शोभित हो गई।

'मत मूरख क्यों दीवाना है!' स्वर में कितनी सजीवता थी। कितना दर्दनाक मर्मस्पर्शी गाना है।

देवव्रत ने आंखें खोल दीं—घड़ी में बारह बज गये थे, सावित्री के कमरे से पियानो की आवाज़ आ रही थी, ओह इतनी रात को सावित्री को क्या सनक सवार हो गई? देवव्रत ने कमरे के दोनों दरवाज़े बन्द कर दिये और पत्नी के कमरे की ओर चले।

बल्ब जल रहा था—महान् आश्चर्य से उनकी आंखें फैल गईं। कुर्सी पर खड़ा हुआ २ वर्ष का सतीश पियानो पर मुट्ठियों से प्रहार कर रहा था—उफ् तो क्या दृश्य भ्रम था? सावित्री सचमुच नहीं है। धीरे-धीरे उन्हें दोपहर की सारी घटना स्मरण हो गई।

देवव्रत ने बच्चे को गोद में उठा लिया और ऊपर के कमरे में चले गये। कुछ देर तक सतीश को टहलाते रहे, फिर उसे सुला कर स्वयं सो गये।

निद्रादेवी ने इस बार दोनों को अपने स्नेहाञ्चल में छिपा लिया और थपकियां देने लगीं।

× × × ×

दिन घण्टों पर गुज़रने लगे। कई सप्ताह बाद उस सूनी अट्टालिका में बहुत से आदमी भर गये – स्त्रियाँ थीं, बूढ़े बच्चे थे, युवतियां थीं और थे युवक। सरगर्मी से काम हो रहा था। दो महीने से जहां पिता-पुत्र अकेले थे—वहां इतने आदमी अचानक क्यों आये ?

देवव्रत का विवाह था। सतीश की नई मां आ रही थी, जिसकी परिभाषा है 'सौतेली मां'। लेकिन इससे क्या ? मां तो हो जायगी।

बाजे बज रहे थे, स्त्रियां मांगलिक गीत गा रही थीं। बहू आ रही है-फूलों के पावड़े डाले गये— और हिलती काँपती, वस्त्रों में लिपटी हुई पुष्पा अपने महावर-रञ्जित पावों से आंगन पार कर रही है—आंगन के एक कोने में नन्हा सतीश खड़ा होकर अपनी बड़ी आंखों से देख रहा है—मां को !

दो महीने से जिसकी प्रतीक्षा में वह पागल हो उठा था, और विवश होकर देवव्रत ने अपने विवाह की स्वीकृति दी थी, उसी माँ को और उस अद्भुत दृश्य को बालक भयभीत होकर देख रहा था।

सुहाग मन्दिर के रस्म पूरे हो गये—देवव्रत बाहर चले आये। एक युवती ने सतीश को पुष्पा की गोद में डाल दिया और बोली—'भाभी, इसे जानती हो !'

पुष्पा जब तक बच्चे को संभाले, तब तक वह उठकर भाग गया और पिता के पास जाकर बोला—ये मां नहीं है।

देवव्रत ने उसे छाती से लगा लिया—हृदय के उद्गार अश्रुओं के रूप में प्रवाहित हो गये। आह! क्या सौतेली मां भी मां बन सकी है। एक घटना उन्हें स्मरण हो आई—एक दिन सावित्री ने कहा था—तुम चले आते हो तो तबियत बहुत घबराती है!

'तब उपाय क्या है' देवव्रत ने परिहास में कहा था।

सावित्री रहस्य पूर्ण हंसी हंसती हुई बोलीं—'विवाह कर लो, नई बहू मेरी सहेली हो जायगी।'

और सतीश को हंसाते हुये उसने कहा—'सुन तेरी नई माँ आयेगी!'

तब से सतीश को सावित्री प्रायः सिखा देती और वह अपनी तुतली बोली में कहता—'नई माँ कब आयेगी?'

जीवन का वह सुखद परिहास आज कठोर सत्य होकर दोनों के सामने आ गया और आज सतीश कह रहा है—'बाबू जी! ये माँ नहीं है।'

उस दिन दोमों पिता पुत्र जी भर कर रोये—बच्चा रोते-रोते सो गया।

दोपहर का सन्नाटा था—विवाह में थकी स्त्रियां, अपने-अपने बच्चों को लेकर कमरे में सो रही थीं।

पुष्पा अकेली एक कमरे में चुपचाप लेटी हुई है। कमरे में बहुत से आकर्षक चित्र हैं, कभी वह अपने माता पिता की याद करती है, और कभी अपने भविष्य की वस्तुओं पर दृष्टि डालती है—ये चीज़ें उनकी पहली पत्नी के हाथ की रक्खी होंगी। कैसी सुन्दर रुचि थी! कमरे की प्रत्येक वस्तु इस प्रकार यथा-स्थान रक्खी गई हैं, जैसे कोई भी वस्तु हटाने से इस सुन्दरता का एक अङ्ग टूट जायेगा—कई चित्र हाथ के बनाये हैं। शीशे पर रंगीन स्पिरिट के फूल पत्तियां और पशु पक्षी अङ्कित हैं—कितनी सफाई होगी उन हाथों में!

रेशमी पर्दा हट कर तीन वर्ष के एक बच्चे के आते ही वह सचेत हो गई।

बच्चा कुछ दूरी पर खड़ा हो गया और बोला—'नई मां!'

पुष्पा ने उठकर बच्चे को पकड़ लिया, इस बार वह भागा नहीं, चुपचाप विमाता की गोद में बैठ गया।

पुष्पा ने अवगुण्ठन हटा कर कहा—मैं तुम्हारी कौन हूं?

'नई माँ!' सतीश की आंखों में डर था, उसने सहम कर कहा।

पुष्पा ने उसके गुलाबी गालों पर उंगली रखकर कहा—'नई मां! नहीं मैं तुम्हारी अम्मा हूं।'

'हां!' सतीश ने पुष्पा को ध्यान से देखकर कहा।

पुष्पा ने उसे अङ्क में भरते हुये कहा—'तुम किसके पास रहते थे मुन्ना!'

'मुन्ना?' सतीश हंसकर बोला—'मेरा नाम सतीशचन्द्र है!'

पुष्पा पुष्प सी खिल गई। बालक का उत्तर कितना मीठा, कितना भोला था।

पर्दे हिल उठे—पिता की छाया देख कर सतीश को याद आया—वह किताब लेने आया था। उसने चारों ओर आंखें घुमा कर देखा—

पुष्पा ने पूछा, 'क्या लोगे ?'

'बाजा।' सतीश ने माँ के कन्धे पर सर रखकर कहा।

'वहां मां के कमरे में' सतीश ने उंगली के इशारे से बतलाया।

पुष्पा समझ गई—बच्चे को गोद में लेकर वह सावित्री के कमरे की ओर बढ़ी।

उसने कमरे का दरवाज़ा खोल डाला—गरम हवा किसी के सांस की भाँति आकर उसके शरीर में समा गई। उसने देखा-मेज़ पर जगह-जगह कई तरह के बाजे रक्खे हुए हैं, जिससे मालूम होता है कि उन्हें संगीत से विशेष रुचि थी! एक ओर दो साड़ियां अस्त-व्यस्त पड़ी हैं, जिसमें अधूरे गोटे टके हैं; पलङ्ग पर एक उजली चादर पड़ी है, जिस में रंगीन रेशम के बड़े सुन्दर बेल-बूटे कढ़े हुए हैं, लेकिन वह भी अधूरा है। पलङ्ग पर बिछी चादर सिकुड़ गई थी, पलङ्ग पोश की चुनावट कलापूर्ण है जिससे एक खूबसूरती आ गई है। पुष्पा ने कमरे की सब खिड़कियाँ खोल दीं। थोड़ी देर में कमरे की हवा साफ हो गई।

पुष्पा ने बच्चे को कुर्सी पर बैठाकर सफाई शुरू कर दी। उसने देखा दीवार से टंगी हुई सुनहरे फ्रेम की एक बहुत बड़ी

तसवीर टंगी हुई है। एक युवक बैठा है—सिर्फ कुर्ता और धोती पहने और उसके कन्धे पर हाथ रक्खे गुलाबी साड़ी पहने हुए २३-२४ वर्ष की एक सुन्दरी युवती खड़ी है। डेढ़ साल का सतीश स्टूल पर खेल रहा है। तीनों के मुख पर खुशी थी, सुख की छापी थी।

पुष्पा ने प्रणाम कर मन ही मन मस्तक झुका दिया—

रात्रि आई। सतीश कहानी सुनता-सुनता सो गया था। पुष्पा कालीन के फर्श पर बैठी हुई उसके बालों में उंगलियां उलझा रही थी, सान्ध्य चांद की रोशनी जाली के रेशमी पर्दे से छन कर आ रही थी।

देवव्रत ने बटन दबाकर रोशनी कर दी और कमरे में पैर रखा! पुष्पा ने स्वागत किया और कहा, 'बैठिये।'

देवव्रत ने अकिञ्चन स्वर में कहा—तुम भी बैठो, कोई तकलीफ तो नहीं है।' पुष्पा अपनी जगह पर फिर बैठ गई।

देवव्रत ने फिर कहा—

'पुष्पा तुम इस घर की लक्ष्मी हो! मैं तुम से एक भिक्षा मांगता हूँ।'

'भिक्षा! आप ऐसी बात क्यों करते हैं ? मैं मन-कर्म से आपकी हूं! आपकी आज्ञा...!'

'पुष्पे! विवाह के बाद मिलता है स्त्रियों को पति का अमर प्रेम, और उस अपार प्रेम-सागर में दोनों एक दूसरे को पाकर सब कुछ भूल जाते हैं; लेकिन मेरे पास तो एकाकी प्रेम भी नहीं है। हाँ, मेरे पास सतीश है। आज प्रथम रात्रि का उपहार मैं

तुम्हें उसी को देता हूं।' देवव्रत की आवाज़ कांपने लगी।

'यह भिक्षा नहीं, यह तो दान है—लेकिन आपके देने के पूर्व ही सतीश मेरा हो चुका है। अब आप आशीर्वाद दें कि मैं एक सफल मां बन सकूं।'

❀ ❀ ❀ ❀

सुख के पाँच वर्ष बीत गए, पुष्पा पुष्प सी खिली दिन रात सतीश की सेवा में मग्न रहती, उसकी बाल क्रीड़ाएं देखकर और उसकी तुतली भाषा में 'नई मां' सुनकर पुष्पा स्नेह-विभोर हो जाती।

देवव्रत जिज्ञासु की भांति देखता कि इस स्नेह में कहाँ तक सत्यता है।

एक बार सतीश बीमार हो गया। उसका ज्वर बढ़ता गया, शीश सूखने लगा आंखें धसने लगीं। डेढ़ महीने तक उसका ज्वर अबाध गति पर रहा। पुष्पा इन दिनों चौबीस घण्टे उसके पास रहती। धीरे-धीरे उसके जीवन से सभी निराश हो गये।

एक दिन डाक्टरों ने स्पष्ट कह दिया 'अब मृत्यु निश्चित है, अवस्था चिन्ता प्रद है।

पुष्पा ने कातर होकर कहा—नहीं नहीं, आप लोग और उपाय करें, मेरे बच्चे को बचा लें।

डाक्टर वी० एन० मेहता ने चिन्तित हो कर कहा, 'एक उपाय है, ताजे रक्त का प्रयोग करने से कुछ आशा की जा सकती है।' डा० मेहता एक सफल चिकित्सक थे।

पुष्पा ने आगे बढ़कर कहा—आप लोग मेरी अन्तिम श्वास

तक रक्त लेकर प्रयोग करें ! मैं जिस खुशी से अपना रक्त दूंगी, निश्चय मेरा सतीश अच्छा हो जायगा ।

और आखिर पुष्पा के शरीर से रक्त लिया गया—जिस प्रकार बाबर ने हुमायूं का रोग अपने ऊपर लिया था, उसी प्रकार पुष्पा ने सतीश का रोग लेकर उसे मुक्त कर दिया—सतीश अच्छा होने लगा और पुष्पा कमज़ोर हो गई ।

दो सप्ताह बाद मालूम हुआ, पुष्पा न्यूमोनिया की शिकार हुई । अन्तिम सांस चल रही थी, उसने गला साफ कर तेज़ आवाज़ में कहा—स्वामी, आज तुम्हारा उपहार वापस करती हूं, अब अपनी कोई सत्ता नहीं ।'

और अन्तिम क्षण में सतीश उसकी गोद में रो रहा था, उसने उसे हृदय से लगाकर सान्त्वना दी—रोओ नहीं, फिर मिलूंगी !

आज पांच वर्ष बाद फिर उस अट्टालिका में निस्तब्धता व्याप रही थी, पिता पुत्र बैठे थे आकाश घिरा था, सावन की बदली चमकती हुई बिजली के साथ खेल रही थी, परन्तु इन के हृदय शून्य थे ।



[७]

सम्राट् का स्वत्व

(श्री राय कृष्णदास)

'एक वह और एक मैं ! किन्तु मेरा कुछ भी नहीं ! इस जीवन में कोई पद नहीं ! वह समस्त साम्राज्य पर निष्कंटक राज्य करे और मुझे एक-एक कोड़ी के लिये उसका मुंह देखना पड़े ! जिस कोख में उसने नौ महीने बिताये हैं, मैं भी उसी कोख से पैदा हुआ हूँ। जिस स्तन ने शैशव में उसका पालन किया, उसी स्तन से मेरा भी शरीर बढ़ा है। जिस स्नेह से उसका पालन हुआ है, उसी स्नेह का मैं भी पूर्ण अधिकारी था। पिता की जिस गोद में वह बैठ कर खेला है, मैंने भी उसी गोद में ऊधम मचाया है। हम दोनों एक ही माता-पिता के समान स्नेह और वात्सल्य के भागी रहे हैं। हम लोगों की बाल्यावस्था बराबर ही के खेल-कूद

और नटखटी में बीती है। हम लोगों ने एक ही साथ गुरु के यहां एक ही पाठ पढ़ा और याद किया। एक के दोष को दूसरे ने छिपाया। एक के लिए दूसरे ने मार खाई। संग में जंगल-जंगल शिकार के पीछे मारे-मारे फिरे। भूख लगने पर एक कौर में से आधा मैंने खाया, आधा उसने। तब किसी बात का अन्तर न था —एक प्राण दो शरीर थे।

'पर आज समय ही तो है। वह सिंहासन पर बैठकर आज्ञा चलाये, मैं उसके सामने भेंट लेकर नत होऊं। कुत्ते के टुकड़े की तरह जो कुछ वह फेंक दे, सो मेरा। नहीं तो पिता-पितामह की, माता प्रमाता की, पूर्वजों की इस विशाल सम्पत्ति पर मेरा बाल भर भी अधिकार नहीं! आह! दैव-दुर्विपाक! एक छोटे से छोटे कारोबारी के इतना भी मेरा अधिकार नहीं। पूर्व-महाराज की मुख्य औरस संतान का कोई ठिकाना नहीं। क्यों इसी संयोगमात्र से कि मैं छोटा हूं और वह बड़ा। ओह! यदि आज मैं वणिक-पुत्र होता, तो भी पैतृक-सम्पत्ति का आधा भाग उसकी नाक पकड़ कर रखवा लेता। किन्तु धिक्कार है मेरे क्षत्रिय कुल में जनमने पर कि मैं दूर्वा की तरह प्रतिक्षण पद-दलित होकर भी जीवित रहूं। हरा-भरा रहूं। 'राजकुमार' कहा जाऊं—'छोटा महाराज' कहा जाऊं! खाली घड़े के शब्द की तरह, रिक्त बादल की गरज की तरह कोरा अभिमान कि इधर से उधर टक्कर खाता फिरूं! शिवनिर्माल्य की तरह किसी अर्थ का न रहूं। अपने ही घर में, अपने ही माता-पिता के आँगन में अनाथ की तरह ठोकर खाता फिरूँ! बिकर के पिंड की तरह फेंका जाऊं। आह! यह स्थिति

असह्य है ! मेरा क्षत्रिय-रक्त तो इसे एक क्षण भर भी सहन नहीं कर सकता। चाहे जैसे हो, इससे छुटकारा पाना होगा। या तो मैं नहीं या यह स्थिति नहीं। देखूं किस की जीत होती है।

'एक क्षण का तो काम है, एक प्रहार से उसका अन्त होता है। किन्तु क्या कायरों की तरह धोखे में प्रहार। प्रताप के लिए तो यह काम होने का नहीं, यह तो चोरों का काम है! दस्युओं का काम है ! हत्यारों की वृत्ति है ?

कुमार प्रतापवर्धन का चेहरा तमतमाया हुआ था। ओठ फड़क रहे थे। नस-नस में तेज़ी से खून दौड़ रहा था। मारे क्रोध के उसके पैर ठिकाने नहीं पड़ते थे। संध्या का शीतल समीर उसके उष्ण शरीर से टकराकर भस्म-सा हुआ जाता था। कुमार को बोध होता था कि सारा प्रासाद भूकम्प से ग्रस्त है। अनेकानेक प्रेत-पिशाच उसे उखाड़े डालते हैं। क्षितिज में संध्या की लालिमा नहीं है, भयंकर आग लगी हुई है। प्रलयकाल में देर नहीं।

जिस प्रकार ज्वालामुखी के लावा का प्रवाह आंख मूंदकर दौड़ पड़ता है, उसे ध्वस्त करता चलता है, उसी प्रकार राजकुमार का मानसिक आवेश भी अन्धा होकर दौड़ रहा था।

'क्यों प्रताप, आज अकेले ही यहां क्यों टहल रहे हो ?

अचानक पीयूषवर्षा हो उठी। राजकुमार की ओर उसकी भाभी—महारानी—चली आ रही थीं। महारानी का प्रताप पर भाई जैसा प्रेम, मित्र-जैसा स्नेह और पुत्र-जैसा वात्सल्य था। राजकुमार उसके सामने आते ही बालक जैसे हो जाते, पर इस समय वे कुछ न बोले। महारानी ने फिर प्रश्न किया, पर राज-

कुमार अवाक् थे। कुछ क्रोध के कारण नहीं, महारानी के शब्द कान में पड़ते ही उनके हृदय को भीषण धक्का लगा था। क्रोध से भारी प्रतिघात हुआ था। और राजकुमार के लिए उस प्रतिघात का सहना असम्भव था। यदि प्रतप्त अंगार औचक शीतल पानी में पड़ जाय तो शतधा फट जाता है। उसी तरह उनके हृदय की दशा हो रही थी। और जब महिषी ने तीसरी बार प्रश्न किया, तब प्रताप बच्चों की तरह रो पड़ा।

राजमहिषी इस गोरखधन्धे को ज़रा भी न समझ सकीं। उन्होंने फिर कोमलता से पूछा—'बोलो प्रताप, आज क्या बात है—तुम पर ऐसा कौन कष्ट पड़ा कि तुम रो रहे हो, मैंने तो कभी तुम्हारी ऐसी दशा न देखी थी। आज दोनों भाइयों में झगड़ा तो नहीं हुआ?'

प्रताप के आंसुओं की झड़ी ज्यों की त्यों जारी थी। कष्ट से हिचकियाँ लेते-लेते उसने उत्तर दिया, पर वे समझ न सकीं।

कुमार का हाथ अपने हाथसे थामकर दूसरा हाथ पीठ पर फेरते हुए वे बोलीं—'शान्त हो, प्रताप! मेरा हृदय फटा जाता है। बोलो, बताओ, क्या बात है? चलो तुम्हारा उनका मेल करा दूँ।'

राजमहिषी ने समझा, कि इसके सिवा अन्य कोई कारण नहीं। प्रताप ने बड़ी कठिनता से अपने आप को संभालकर कहा—'भला मैं किस बल पर भाई का सामना करूंगा?'

'प्रताप, ऐसी कटु बात न कहो। तुम्हें स्नेह का बल है,

स्वत्व का बल है। इससे बढ़कर कौन बल हो सकता है! बोलो क्या कारण है? कहो, मेरा हृदय क्रन्दन कर रहा है।'

महारानी का कण्ठ रुँध गया था, उनकी आंखें भर आई थीं।

'कुछ नहीं भाभी! मन ही तो है। यों ही कुछ बीते दिनों की याद आ गई। स्नेहमयी माता नहीं, पर तुम तो हो। अब तक मैं निरा बच्चा ही बना हुआ था। बस, यह बचपन की एक तरंग थी।'

'नहीं प्रताप, तुम्हें मेरी शपथ है, मुझे अपना दुःख सुना दो। चाहे तुम्हारा हृदय ऐसा करने से हलका न हो, पर मेरा हृदय अवश्य हलका हो जायगा।'

प्रताप ने उदासीन मुस्कराहट, छूँछी हंसी हंसते हुए कहा– कुछ नहीं भाभी, कुछ हो तब तो! सन्ध्या की उदासी, निराली अटारी, मन में कुछ सनक आ गई थी। अब कुछ नहीं। चलिए, आज हम लोग घूमने न चलेंगे?'

'प्रताप, तुम टाल रहे हो। इस में मुझे दुःख होता है। आज तक तुमने मुझसे कुछ छिपाया नहीं। जो दुःख-सुख हुआ, सब कहा। आज यह नयी बात क्यों?'

प्रताप फिर बच्चों की तरह सिसकने लगा। उसने महिषी के चरणों की धूलि सिर पर लगा ली।

'भाभी तुम्हारा बच्चा ही ठहरा, कहूं नहीं तो काम कैसे चले। कहूँगा, सब कहूँगा। पर क्षमा करो। इस समय चित्त ठिकाने नहीं है। फिर पूछ लेना।'

'अच्छा, घूमने तो चलो ।'

'नहीं, इस समय मुझे अकेले छोड़ दो, भाभी ।'

'क्यों तुम्हीं ने अभी प्रस्ताव किया था न ?

'भाभी, वह कपट था ।'

'प्रताप, तुम—और मुझसे कपट करो ! कुमार, मैं इसे देवताओं की अकृपा के सिवा और क्या कहूँ, अच्छा जाती हूँ। किन्तु देखो, तुम्हें अपना हृदय मेरे सामने खोलना पड़ेगा ।'

रानी भी रोती-रोती चली गई। राजकुमार रिक्त दृष्टि से उसका जाना देखता रहा। फिर वह खड़ा न रह सका, वहीं अटारी की मुंडेर पर बैठ गया।

महारानी ने देखा कि सम्राट् उद्यान में खड़े हैं। रथ तैयार है। उन्होंने भी महारानी को अकेली आते देखा—उसका उतरा हुआ मुंह देखा, लटपटाती गति देखी। हृदय में एक धक्-सी हो गई। पूछ बैठे—

'क्यों' प्रताप कहां है ? और तुम्हारी यह क्या दशा है ?

'कुछ नहीं'—महिषी ने भर्राये स्वर से कहा—'चलिए घूमने ।'

'आज वह न चलेगा ? बात क्या है, कुछ कहो तो ?'—महाराज ने रूखे स्वर से पूछा।

भृत्यवर्ग स्तम्भित था, चकित था। हाथ बाँधे हुए खड़ा तो था, पर हृदय में कांप रहा था—क्या होने को है ?

राजमहिषी ने महाराज के निकट जाकर धीरे-धीरे कुछ बातें कीं।

महाराज ने कहा—'यह सब कुछ नहीं, चलो प्रताप से एक बार मैं तो बातें कर लूं।'

\+ + +

प्रताप और महाराज सामने थे। प्रताप की आँखें भूमि देख रही थीं। किन्तु भौंहें तन उठी थीं। महाराज हिमालय की तरह शान्त थे। उन्होंने जिज्ञासा की—

'भाई प्रताप, आज कैसे हो रहे हो ?'

किन्तु कुमार ने कोई उत्तर न दिया।

सम्राट् ने उनका हाथ थाम लिया और स्नेह से उसे सहलाने लगे। प्रताप के शरीर में एक झल्लाहट-सी होने लगी। विरक्ति और घृणा से। क्रोध ने कहा कि एक झटका दो और हाथ छुड़ा लो। साहस भी था। पर भ्रातृ-भाव ने यह नौबत न आने दी। तो भी प्रताप ने कोई उत्तर न दिया।

'प्रताप, न बोलोगे ? हम लोगों के जन्म-जन्म के स्नेह की तुम्हें शपथ है, जो मौन रहो।'

'भैया—'यहां प्रताप का गला रुक गया। बड़ी चेष्टा करते हुए उसने कहा—'अब स्नेह नहीं रह गया।'

'क्यों, क्या हुआ ?' महाराज उस उत्तर से कुछ चकित हो गये।

'भैया—' क्षत्रिय-रक्त ने ज़ोर किया और नदी का बांध टूट गया—प्रताप ने वयस्क होने के बाद पहली बार भाई से आंख मिलाकर कहना शुरू किया—'जिस जीवन की कोई हस्ती न हो,

वह व्यर्थ है। हम दोनों सगे भाई हैं तो भी—मैं कोई नहीं और आप चक्रवर्ती। यह कैसे निभ सकता है?'

'तो लो तुम्हीं शासन चलाओ प्रताप।'

महाराज ने अपना खड्ग प्रताप की ओर बढ़ा दिया।

प्रताप ने इस स्थिति की स्वप्न में भी कल्पना न की थी। वह किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया। महाराज सम्राट् उसके हाथ में खड्ग देने लगे और वह पैरों पड़ने के सिवा कुछ न कर सका। तब महाराज ने उसे छाती से लगा लिया और समुद्र के-से गम्भीर स्वर में कहने लगे—

'सुनो प्रताप, सम्राट् राष्ट्र की एक व्यक्ति में केन्द्रित सत्ता है। भाई हो अथवा बेटा, कोई उसे बांट नहीं सकता। यह वैभव देखकर न चकपकाओ। राष्ट्र ने अपनी महत्ता दिखाने के लिए और उसे स्वयं प्रभावान्वित होने के लिए इस वैभव को—इन अधिकारों को, राजा से सम्बद्ध किया है। ये अधिकार सम्पत्ति के, विलासिता के, स्वेच्छाचारिता के द्योतक नहीं। यहाँ तराजू की कमाई नहीं है जो तौलकर जुटती और तौलकर ही बंटती भी है। यह है शक्ति की कमाई, और वह शक्ति क्या है? कच्चे सूत हाथी को बांध लेते हैं, किन्तु कब? जब एक में मिलकर वे रस्सी बन जाते हैं, तब। हाँ, कौटुम्बिक जीवन में यदि हम तुम दो हो तो मैं अवश्य दण्डनीय हूँ! समझो भाई!

इसी समय राजमहिषी मुस्कराती हुई महाराज से कहने लगीं—'नाथ, इसे लक्ष्मी चाहिए लक्ष्मी—आप समझे कैसी—गृहलक्ष्मी।'

कुमार लज्जित हो गया। फिर वह हंसता हुआ सम्राट् सम्राज्ञी दोनों को सम्बोधित कर कहने लगा—

'क्या समय बिता के ही घूमने चलिएगा ?'

[९]

अनोख सिंह की पत्नी

(प्रो० सन्त सिंह सेखों)

यदि आपको आजकल कहीं अमृतसर जाने का अवसर प्राप्त हो तो आपको वहां स्टेशन पर सैकण्ड क्लास के टिकटघर की ड्योढ़ी में घूमता हुआ अनोख सिंह मिलेगा। आंखें पथराई सी थीं और दाढ़ी स्फेद, साफ दिखाई पड़ता है कि यह पहले काली की जाती थी। इसी ड्योढ़ी में वह अपनी प्यारी पत्नी को खो बैठा है। वही तो उस के सारे जीवन की कमाई थी। मानो एक बहु-मूल्य हीरा उस के टिकट लेते समय किसी जेबकतरे ने उस की जेब काट कर लूट लिया हो।

उस के चेहरे पर कुछ ऐसी विचार-रहित घबराहट सी है कि आप उस की उस ड्योढ़ी में फिरते हुए की उपेक्षा नहीं कर

सकते। "हाँ सरदार साहिब! आप किसी ट्रेन का पता करना चाहते हैं?" आप पूछेंगे तो हैरान होंगे कि आप ने उसे इस भांति सम्बोधित करके कोई असावधानता तो नहीं की।

"मेरी कहानी बहुत लम्बी है, परन्तु यदि आप के पास समय है, तो बहुत लम्बी भी नहीं। मैं आप के पाँच मिंट से अधिक नहीं लूंगा," वह कहेगा, ताकि यदि आप के दिल में उस की कहानी सुनने के लिए कुछ शङ्का हो गई हो तो वह दूर हो जाए।

आप इधर उधर देखेंगे। उस के कपड़े और साधारण अवस्था ऐसी अच्छी हैं कि आप को यह शङ्का नहीं होगी कि वह कुछ माँगना चाहता है। केवल आप को यह प्रतीत होगा कि उस की कहानी अनोखी और सुनने से संबन्ध रखती है। या शायद उस की पत्थर जैसी आंखें सांप की आंखों की भांति आप पर ऐसा जादू कर देंगी कि आप अपने स्थान पर ही गड़े रह जाएंगे।

"मैं एक रिटायर्ड कप्तान हूं" वह कहना आरम्भ करेगा, "मेरा नाम अनोख सिंह है, मैं फ्रांस, दर्रा दानियाल, टर्की, मैसोपोटामिया, ईराक में यूरोपीय युद्ध के समय हो आया था। मैंने युद्धक्षेत्र में ही कमीशन प्राप्त किया। १६०८ में स्कूल छोड़कर मैं भरती हो गया। मेरा पिता पहले उसी पलटन में सूबेदार था।" इस प्रकार वह जल्दी २ अपना इतिहास बता देगा। "परन्तु कमीशन से भी एक बहुत अनोखी और बहु-मूल्य चीज़ मैं युद्ध क्षेत्र से लाया।" यह कह कर वह कुछ देर चुप रहेगा।

आप अपने दिल में समझ जाएंगे कि उस आदमी को कहानी

कहने का ढङ्ग आता है, और फिर आप कहेंगे "वह अनोखी वस्तु क्या थी ?"

"देखा, मुझे पता था कि मेरी कहानी आपको मनोरंजक लगेगी।" वह कहेगा और उस की मुस्कराहट से प्रतीत होगा, कि आप पर उस का प्रभाव हो गया है।

"अच्छा वहां टर्की में एक नगर पर हमने अधिकार कर लिया, और वहां एक अठारह वर्ष की जारजियन लड़की मुझ से प्रेम करने लग गई। उस की माता अंग्रेज़ थी, इस लिए वह मेरे जैसी अंग्रेज़ी बोल लेती थी। वह अत्यन्त सुन्दर थी, और हमारा प्रेम प्रथम दर्शन (पहिली बार मिलने) पर ही हो गया था। जैसे कि एक अंग्रेज़ कवि लिखता है कि वह प्रेम ही क्या, जो पहली बार मिलने से न हो।

इस पर वह अपनी आंख पोंछने के लिए हाथ ऊपर ले जाएगा, पर उस आँख में आंसू कहां ? और आपके होंठों पर मानों कवि की लोकोक्ति सुन कर कुछ मुस्कराहट आ जाएगी।

"जैसे तैसे मैंने उस से विवाह कर लिया। और उसको अपने गाँव भोलापुर जो यहाँ से बीस मील की दूरी पर है ले आया।"

आपके मुख से "अच्छा" स्वयं ही निकल पड़ेगा। उस अनोखी कहानी में आपके लिए ऐसी मनोरंजकता पैदा हो जायगी कि आप उसे छिपा न सकेंगे। वह फिर मुस्कराएगा और कहेगा "हां मैं उसे अपने गांव ले आया। वह मुझ पर मुग्ध थी। उस

समय मैं कठिनता से पैंतीस साल का था और बहुत सुन्दर था।"

उस के चेहरे पर गर्व का कोई चिन्ह तक नहीं दीख पड़ेगा। आप उस के चेहरे की ओर देखेंगे तो मान जाएंगे कि सचमुच वह उस समय बहुत सुन्दर होगा। एक प्रकार से वह अब भी आप को सुन्दर लगेगा।

"हम दोनों गाँव में एक प्रकार की अनोखी जोड़ी बन गए थे। केवल गांव में ही नहीं, अपितु मीलों तक सारे प्रदेश में। दोनों महाद्वीपों—एशिया और यूरोप में वह सब से अधिक रूपवती थी। यूरोप की यह मेमें भला उसका क्या मुकाबला कर सकती हैं? मैं तो यूरोप की स्त्रियों पर थूकता भी नहीं।"

आपको उस पुरुष की सादगी और रूखी भाषा पर कुछ मुस्कराहट आजाएगी। परन्तु फिर आप विचार करेंगे कि सिपाही ऐसे ही सादे और निस्संकोच होते हैं। कोई बात नहीं।

"मैंने एक बहुत सुन्दर घर बनवाया। सारे गांव सारे प्रदेश में बहुत सुन्दर। हम दोनों राजसी ठाठ से रहते थे। हां, राजसी ठाठ से।" वह दुहराएगा ताकि आप के विचार में राजसी ठाठ के बारे में जो गलत और बहुत ऊंचे विचार हैं, वह दबाए जाएं।

"सारा गांव—बूढ़े, युवक, पुरुष, स्त्रियां, लड़कियां और लड़के हैरान थे। समीप के ग्रामों से लोग हमें देखने आते थे।"

यह कहकर वह ऊपर को देखेगा, ताकि आप का ध्यान किसी दूसरी ओर न चला गया हो।

आप झटका सा खाकर "हाँ" कहेंगे और अपना ध्यान उस की ओर कर लेंगे।

"आप जानते हैं कि पंजाबी युवती को अपनी सुन्दरता पर बहुत अभिमान होता है, और वह यूरोपीय स्त्रियों को अपने मुकाबले में कुछ नहीं समझती। क्योंकि उनका वर्ण ही सफेद होता है, परन्तु अङ्ग-सौष्ठव का अभाव होता है। और पंजाबी युवकों को भी अपनी स्त्रियों पर गर्व होता है। परन्तु सब युवक मेरी पत्नी की सुन्दरता को मानते थे, और प्रायः हार मानते थे। ग्रामीण उसे यहूदन कहते थे, यद्यपि वास्तव में वह यहूदन नहीं थी।"

आप इस कहानी को ज्यों २ सुनेंगे, आश्चर्य करेंगे। और आपको चूल्हे के समीप बैठ कर, बहिन और बुआ से सुनी हुई कहानियां याद आने लग पड़ेंगी। "एक राजकुमार अकेला घोड़े पर चढ़ा हुआ जंगल में दोपहर के समय एक हरिण के पीछे लग कर अपने साथियों से बिछुड़ गया। घूमता फिरता एक बड़ के वृक्ष के समीप आया। जहाँ एक अत्यन्त सुन्दर स्त्री छाया में बैठी थी, वह झट उस स्त्री से प्रेम करने लग पड़ा। उस स्त्री ने उसे स्वीकार कर लिया और उस के घोड़े पर उस के पीछे चढ़ बैठी। वह महलों में आगए और कई वर्ष आनन्द से जीवन व्यतीत करते रहे परन्तु अन्त में एक रात वह स्त्री बिना सूचना दिए ही कहीं निकल गई और राजकुमार को किसी काम का न छोड़ा। इस आदमी से भी ऐसी ही बीती मालूम होती है, आप ख्याल करेंगे।

"स्त्रियां जत्थे बना कर उसे गुरुद्वारे या किसी ब्याह शादी वाले घर ले जाने के लिए आतीं। नवयुवक जब हमारी बैठक के पास से निकलते तो खिड़कियों में से अन्दर की ओर झांकते। मैं

केवल उन पर हंस देता। उस तक किसी की पहुंच नहीं थी। नहीं तो आप ख्याल करें कि एक लड़की हज़ारों मीलों पर प्रदेश में पैदा होती है, पलती है, बड़ी होती है। युद्ध होता है मैं उस देश में जाता हूं और वह मुझे एक बार देखने से ही मुझ से प्रेम करने लग जाती है, और......मुझे उस को बाबत बिलकुल शंका और भय नहीं था। मैं उन ग्रामीण शौकीनों पर हंस छोड़ता था।"

इस बात पर पहुंच कर आप समझने लग पड़ेंगे, कि शायद उस से प्रेम न करके वह स्त्री गांव के किसी और युवक से प्रेम करने लग पड़ी हो, या किसी के साथ भाग गई हो।

वह आपका हाथ पकड़ कर दबाएगा, और आपके ध्यान को अपनी ओर खींचेगा। "फिर तीन वर्ष में हमारे दो बच्चे पैदा हुए, दोनों लड़के" वह कुछ तन कर कहेगा। ऐसा प्रतीत होगा कि उस का निश्चय था, कि उन दोनों बच्चों का लड़का होना उस के असाधारण पौरुष का प्रमाण है। "एशिया और यूरोप दोनों महाद्वीपों में वह सब से सुन्दर बच्चे थे। सारा गाँव क्या, सारा प्रान्त, उनको देख कर अचम्भित था बड़ा लड़का अभी जीवित है और दो भाषाएं बोलता है भगवान् उस को दीर्घ आयु दे।

अब आप एक और अनुमान लगाएगे। शायद वह स्त्री छोटे बच्चे के वियोग को सहन न करके परलोक सिधार गई हो।

"हम बहुत प्रसन्न थे। प्रति सप्ताह नगर में सिनेमा देखने आते। कभी २ हम बड़े लड़के को भी साथ ले आते।"

आप अनुमान लगाना छोड़ देंगे। इस प्रकार आप और दुविधा में पड़ जाएंगे, और कोई उपाय नहीं ढूंढ सकेंगे।

"इन स्थानों पर हमारे और भी कई लोग परिचित हो गए। उस का परिचय अधिक यूरोपीयन स्त्रियों और धनाढ्य घरानों के साथ था। पुरुषों की मित्रता वह बिलकुल नहीं चाहती थी और पुरुष के साथ बहुत कम बात करती थी।

इस सोसाइटी में वह बहुत प्रसन्न थी। कई बार यूरोपीयन हमें अपनी कोठियों में चाय पर बुलाते, और......"

यहां आप को कुछ हंसी भी और दया भी आवेगी। यह विचार कर कि इस प्रकार की सोसायटी में यह पगड़ी वाला, तथा दाढ़ी वाला आनरेरी कप्तान कैसा बेढब्बा और मूर्ख मालूम होता होगा। वह किस प्रकार मूर्खों की भान्ति उस पर पहरा देता होगा, जब कि वह अपने अंग्रेज़ परिचितों के साथ चाय पीती होगी।"

"परन्तु आप जानते हैं, हमारे गाँवों के बूढ़े लोगों को। यह बूढ़े लोग प्रत्येक स्थान पर इसी प्रकार के होते हैं। वे मानो हमें प्रसन्न देख कर ईर्ष्या करते हैं।"

सत्य बात है, आप भी बूढ़ों के साथ घृणा करते हैं, तो उस के इस विचार की झट समर्थन कर देंगे।

"वह अवश्य प्रार्थना करते होंगे कि हमारे ऊपर कोई विपत्ति आजाए। शायद इसी कारण से मेरा छोटा लड़ा एक वर्ष का होकर मर गया।"

आप उस की आंखों की ओर देखने लग पड़ेंगे परन्तु व्यर्थ। वहां पर अश्रुओं के लिए कोई स्थान ही नहीं। उन आँखों

में एक ऐसे शोक का दृश्य विद्यमान है कि जो मृत्यु से कहीं बढ़ कर है।

"इस बच्चे की मृत्यु ही कारण है कि वह गुम हो गई। इस बात को हुए दस वर्ष से अधिक हो चुके हैं। क्या आप विचार कर सकते हैं कि इस विपत्ति के बिना मेरे बाल सफेद हो सकते थे?"

इस बात से आप के दिल में बेचैनी सी आ जाएगी और शीघ्रता से पूछेंगे "हाँ, फिर क्या हुआ?"

"आप जानते हैं, हम मुर्दे को जला देते हैं, इस लिए हम उस बच्चे की लाश को शमशान में ले गए। वह भी हमारे पीछे गई। बच्चे को जलाने पर से आपत्ति थी। वह बच्चे को दबाना चाहती थी, परन्तु यह आप जानते हैं कि यह हमारे धर्म के विरुद्ध है।" वह यह कहकर ऊपर देखेगा। ऐसा प्रतीत होगा कि वह आप से इस बात की पुष्टि चाहता है कि ऐसी बातों में धर्म से मुंह नहीं मोड़ा जा सकता।

"मेरे बच्चे का फूल जैसा शरीर आप आग में जलाने लगे हैं" कह कर वह फूट-फूट कर रोने लगी और चिता की ओर दौड़ी ताकि बच्चे को उठा ले।

वह चाहती थी कि बच्चे को लकड़ी के संदूक में बन्द करके पृथ्वी में दबाया जाए। ताकि प्रलय के दिन उस का शरीर ठीक निकले। यह उसके धर्म का सिद्धान्त है।

"हूँ।"

"बड़ी कठिनता से हम ने उसे चिता से बचाया, परन्तु उस

दिन से वह कोई और ही स्त्री बन गई, पहले जैसी न रही। मुझे झिड़कने लगी, तूने मेरा फूल जैसा बच्चा आग में जला दिया। अब उसे मुक्ति नहीं मिल सकती।

आपका सिर खेद से हिलने लग पड़ेगा. परन्तु वह अपनी कहानी जारी रक्खेगा।

"तद्नन्तर मैं उसे शहर में अधिक लाने लग पड़ा, परन्तु वह कभी प्रसन्न न हुई। उस सभा में, जिसे वह पहले सब से अधिक चाहती थी, एक घायल हरिणी की भान्ति रहने लगी, और दूसरों से डरने लगी। अन्त में एक दिन जब रात को हम सिनेमा देख कर वापस गाड़ी पर चढ़ने के लिये आए और मैं टिकट लेने गया तो मालूम नहीं वह यहाँ से कहां चली गई।"

अब आप समझ जाएंगे कि क्या हुआ।

"वह जारजिया वापस नहीं जा सकती। जारजिया कोई समीप का स्थान नहीं है। यदि उसने इस भान्ति भाग जाना होता तो वह मेरे साथ आती ही क्यों।"

"नहीं ऐसा नहीं हो सकता। वह मुझ से बहुत प्रेम करती थी। वह मुझे ईनोक, जो कि एक इसाई नाम है, कहकर बुलाती थी। यह मेरे असली नाम से मिलता है और मैं उसे रूप कहकर बुलाता था। उसका असली नाम रूथ था।" यहां वह आप के मुंह की ओर देखेगा, परन्तु आप ऐसे खेद में डूबे होंगे कि उसे अपना व्यथा फिर शुरू करने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं दिखाई देगा।

"वह अवश्य वापस आएगी। मुझे निश्चय है। भाग्य ने हमारी जोड़ी बनाई थी, नहीं तो कहाँ उसका जारजिया में हज़ारों मीलों पर जन्म लेना और कहां मेरा हिन्दुस्तान में, सब कुछ जुदा मैं उसे ढूंढ़ने नहीं गया वह स्वयं आई और मेरे साथ उसका प्रथम दर्शन पर ही प्रेम हुआ था, अब भी मैं उसे ढूंढ नहीं रहा हूँ। वह बिना ढूंढे मेरे पास वापस आयेगी। मैं तो यहां उस की प्रतीक्षा में खड़ा हूं।"



[१०]

करीम मर गया !

(श्री कृष्णानन्द गुप्त)

(१)

१८५७ का सन्। जून का महीना। दिन ढल चुका है, पर सूर्य की तिरछी किरणें अब भी आग बरसा रही हैं।

उरई से कालपी जाने वाले मार्ग पर एक चौपहिया गाड़ी कुछ यात्रियों को लेकर, पथ की धूल उड़ाती हुई, तेज़ी से आगे बढ़ रही है। गाड़ी के घोड़े धूल और पसीने से लथ-पथ हैं। मुंह में फेन भरा है, और पसलियां धौंकना की तरह चल रही हैं। कोचवान को फिर भी उन पर दया नहीं। पीठ पर चाबुक पर चाबुक छोड़ रहा है, मानो उसके स्वामियों ने पृथ्वी के दूसरे छोर पर ही विश्राम करने की शपथ खाई है।

गाड़ी में जो यात्री हैं, उनकी अवस्था घोड़ों से कम शोचनीय नहीं। गाड़ी में स्थान की कमी की वजह से एक दूसरे पर लदे बैठे हैं। मूक और निश्चेष्ट। पथरीला मार्ग है ठोकर लगती है, तो निर्जीव गठरियों की भांति ऊपर उछल जाते हैं, और एक दूसरेसे टकराते हैं। पर वे न 'ऊ' करते हैं न 'आ'। मानो किसी भयानक विपत्ति की प्रतीक्षा में हैं, जिसकी तुलना में उनका यह कष्ट बिल्कुल ही नगण्य है।

एक ओर तीन युवक हैं। हट्टे-कट्टे और मज़बूत। चुपचाप बैठे हैं। उनकी छायादार टोपियाँ सूर्य के ताप से उनके चेहरों की रक्षा नहीं कर पातीं, क्योंकि सूर्य उनके सामने है। उनमें से एक की गोद में एक अल्पवयस्क बालक है। देखने में सुन्दर और सुकुमार। रौद्र के प्रखर ताप में उसका खिला हुआ चेहरा एक बार ही सूख गया है। उसके हाथ में तरबूज का एक टुकड़ा है, जिसे वह लुब्ध भाव से बार-बार चूस रहा है। एक युवक ने उसके सिर पर अपने कोट से छाया कर रक्खी है, पर वायु के वेग में वह एक जगह टिक नहीं पाता।

तीन व्यक्ति दूसरी ओर हैं। एक वृद्ध, एक युवती और एक अधेड़। युवती वृद्ध के निकट बैठी है, मानो किसी ने शिशिर के पार्श्व में बसंत को बिठा रक्खा है। वह रूपावती है। सुकुमारी है। फिर भी प्रकृति को उस पर दया नहीं है। लू के गरम झोंके उसके मुंह पर तमाचे मार रहे हैं। सिर पर धूल जमी है। आँखें भूरी हो रही हैं। और उस भूरेपन के भीतर एक ऐसी अव्यक्त निराशा और असीम करुणा छिपी हुई है कि देखकर आश्चर्य और कौतूहल

होता है, साथ ही साथ बड़ी दया भी आती है। नियति ने निस्संदेह उसे और उसके साथियों को धोखा दिया है, क्योंकि उनके गोरे शरीर भारतवर्ष की भयानक गर्मी के लिये बने नहीं जान पड़ते।

कालपी के निकट पहुंच कर कोचवान ने घोड़ों कीरास खींची। ग्रीष्म के प्रभाव से नगर के बाहर का पथ निर्जन बना हुआ है। दो-एक नगर-निवासी आ-जा रहे हैं। चौपहिया गाड़ी और उसमें बैठे यात्रियों को देख कर वे ठिठक गए, और कौतूहल भरी दृष्टि से देखने लगे। कोचवान ने अँगोछे से अपना मुँह पोंछा, और आराम की साँस लेकर इतनी देर बाद बोला—"बाप रे, दिन डूबने को आया। फिर भी आग बरस रही है। आज कहीं चैन भी मिलेगा!" फिर धूल से भरी दाढी और ढीले एवं फटे पायजामे को देख कर कहने लगा—"कैसी कलंदर-जैसी शकल बन गई है। झांसी से कालपी तक की सारी धूल मानो मेरे ही सिर पर आई है।"

एक भले नागरिक को पास से गुजरते देखकर उसने गाड़ी रोकी, और पूछा—"क्यों साहब, यहां कहीं पानी भी मिलेगा?"

यात्री सिर उठा कर व्याकुल, शून्य दृष्टि व्यक्ति को देखने लगे, मानो सब के सब उससे कुछ कहना चाहते थे।

नागरिक ने उत्तर दिया—"क्यों नहीं, आगे कुआँ है, पियाऊ भी है।"

कोचवान ने आगे बढ़ने के उद्देश्य से घोड़ों की पीठ से चाबुक स्पर्श किया। यात्रियों पर दृष्टिपात करके नागरिक ने विस्मित भाव से पूछा—"तुम्हें जाना कहां है?"

"कहां बताऊं!" कोचवान को कदाचित स्वयं ही अपने

गंतव्य स्थान का पता नहीं था। परन्तु उस व्यक्ति के सफेद बाल और भद्र-जनोचित वेश-भूषा देखकर वह बोला—"जहां भाग्य ले जाय, लाला जी!"

भद्र पुरुष ने प्रश्न किया—"तो क्या चले ही जाओगे? रात्रि में आराम नहीं करोगे? घोड़े तो इस योग्य हैं नहीं कि आगे जायँ!"

कोचबान बोला—"आराम तो सब कुछ करना चाहता हूँ, अगर कहीं ठिकाने की जगह मिले, तब तो। इन अंगरेज़ों के पीछे बागी हैं कल सवेरे झांसी छोड़ी थी, तब से बराबर चल रहा हूं। आराम कैसा होता है, घड़ी-भर के लिये भी नहीं जाना। आपको क्या बताऊं साहब कैसी मुसीबत में पड़कर इन अंगरेज़ों को बचा पाता हूँ। झांसी से भांडेर गया। वहां से कौंच। कौंच से आज उरई। वहां बहुत कोशिश की कि कोई इन लोगों को अपने घर छिपा ले, मगर जान-बूझकर कोई ऐसी मुसीबत मोल क्यों लेने लगा! जहां सुना कि इनके पीछे बागी हैं, सबने किवाड़ बंद कर लिये। कल से बेचारों के मुंह में दाना नहीं गया। सारी दोपहरी सिर पर बीती है। उरई में पानी पिया था। खाने को वहाँ भी नसीब नहीं हुआ। तब से यहां गाड़ी रोकी है।"

कोचवान की लम्बी दाढ़ी और ढीला पायजामा देखकर उस सज्जन ने कहा—"खाँ साहब, आपने बड़ी गलती की, जो इन अंगरेज़ों को इस रास्ते से लाए। आपके लिये तो इन दिनों सब तरफ मुसीबत-ही-मुसीबत है। वहां खन्दक से बचकर आए हैं, तो यहां खाई है। कालपी आजकल बागियों का अड्डा हो रहा है। दो

दिन से रावसाहब यहीं किले में पड़े हैं। यदि आप सचमुच इन अंगरेज़ों को बचाना चाहते हैं, तो यहां से उलटे पैरों लौट जाइए। रात में कहीं रहिए, मगर बस्ती में मत जाइए।"

कोचवान सहसा चौंक उठा। अपनी मौत की खबर पाकर भी शायद उसके मुंह का भाव इतना न बिगड़ता, जितना उस भद्र पुरुष के मुंह के उपर्युक्त समाचार सुनकर। उसे कालपी की स्थिति का पता नहीं था, अन्यथा इस मार्ग पर वह कदापि पांव न धरता बोला—"भाई साहब, ये सात प्राणी इस वक्त मेरे लिये दुनिया की बड़ी-से-बड़ी नियामत से भी बढ़कर हैं क्योंकि अपनी जान जोखिम में डालकर मैं इन्हें बचाकर लाया हूं। मगर आपने तो यह बुरी खबर सुनाई। रात के समय कहां जाऊँ ? जंगल में तो रहूंगा नहीं। कोई सुभीते की जगह बताइए, जहां ये रह सकें, और कुछ खाने-पीने को भी मिल सके। दो दिन हो गए, इनके मुंह में दाना तक नहीं गया।"

भद्र पुरुष कुछ विचलित-से होकर बोले—"यह खूब रही खां साहब, जो रास्ता बतावे, वही आगे हो। मैं तुम्हें कौन-सा स्थान बता दूँ ? यहां तो कोई धर्मशाला भी नहीं है। एक है, मगर वहां तुम सुरक्षित रहोगे, यह कैसे विश्वाश दिला सकता हूं !"

कोचवान गाड़ी से नीचे उतर आया, और भद्र पुरुष का हाथ पकड़कर कातर स्वर में बोला—"इन अंगरेज़ों पर रहम खाइए, भाई साहब। बड़ा पुण्य होगा, इन्हें आप बचा लेंगे तो। कोई युक्ति सोचिए कि ये कुशल से रह सकें।"

भद्र सज्जन कोचवान के मुंह की ओर देखकर बोले—"भाई,

मैं क्या युक्ति सोचूँ ?"

"युक्ति तो आसान है, अगर आप चाहें। आज रात के लिये इन्हें आप अपने घर में जगह दे दीजिए।" कोचवान ने तुरन्त अपनी बात कह डाली।

भद्र पुरुष अवाक् होकर उसे देखने लगे। क्षण-भर के लिये स्वयं यह विचार उनके हृदय में उठा था कि विपद्-ग्रस्त अङ्गरेज़ों को अपने घर ले चलें, परन्तु यह विचार तुरन्त ही लीन हो गया। उन्होंने कहा—"यह तो मुश्किल है।"

कोचवान बोला—"नहीं जनाब, कुछ मुश्किल नहीं। पुण्य का काम करने में भी कभी किसी को कठिनाई हुई है ? कसम से कहता हूं, किसी को कानोंकान खबर नहीं होगी। अंधेरा हो ही चला है। दो-तीन दिन के लिए अपने घर का कोई अन्धेरा कमरा खाली कर दीजिए।"

"सो तो मेरी हवेली में ऐसे कई कमरे हैं।" भद्र सज्जन बोले।

"बस-बस, किसी एक में छिपा दीजिए। ईश्वर आपको चिरायु करे। ज़रा ख्याल कीजिए इनकी मुसीबत का। दो दिन से मौत के स्वप्न देख रहे हैं। आप जब कालपी का यह हाल बताते हैं; तो भगवान् ही इन का मालिक है।"

भद्र सज्जन चुप रहे। जान-बूझकर इस मुसीबत को मोल लेना बुद्धिमानी होगी, अथवा नहीं, यही सोच रहे थे। तब तक कोचवान ने फिर कहा—"मुझे एक-एक घड़ी एक-एक युग के समान जान पड़ती है। और, इन सबको प्यास लगी है।"

भद्र सज्जन ने कुछ देर बाद धीरे से कहा—"देखिए, घबराइए नहीं। वही सोच रहा हूं। इन लोगों को किस प्रकार हवेली तक ले चलूं। अगर राव साहब के किसी आदमी को खबर हो गई, तो मेरे मकान की एक ईंट भी नहीं बचेगी।"

कोचवान समझदार था, चुप हो गया, और खुशी-खुशी अपने मालकों से बात करने लगा। उसमें से एक अंग्रेज़ टूटी फूटी हिन्दी समझ लेता था। उसने अपने साथियों को सारी परिस्थिति बताई। गोरों को जीवित रहने की बहुत आशा नहीं थी। वे अपने को मृत्यु के उस किनारे पर खड़ा हुआ समझ रहे थे, जहां से कोई वापस नहीं लौट सकता। निराशा के इतने बड़े अन्धकार में आशा की यह ज्योति ऐसी थी, जिसका दर्शन पाकर वे पल-भर में यात्रा का सारा कष्ट भूल गए। उन सबकी कृतज्ञ दृष्टियों ने भद्र सज्जन पर धन्यवाद की अजस्र वर्षा की। उनमें से जो थोड़ी हिन्दी जानता था, वह बोला—"हम तुम को बहुत रुपया देगा। इतना रुपया कि तुमने कभी देखा न होगा। तुम हमको धोखा नहीं देगा ? क्यों ?"

कोचवान बोल उठा—"आप कैसी बात करते हैं ? साहब ! ऐसे मौकों पर हम लोग अपने दुश्मन को भी धोखा नहीं देते।"

भद्र सज्जन ने विपत्ति के मारे उन गोरों को अपनी हवेली में स्थान दिया। उनको हवेली के ऐसे खण्ड में छिपाकर रक्खा, जहाँ कोई पक्षी भी पर नहीं मार सकता था, और अपने विश्वासपात्र नौकरों को समझा दिया कि इस विषय में वे बिल्कुल मौन रहें। किसी से इन गोरों की चर्चा न करें, क्योंकि ये अपनी

शरण आए हैं, और शरणागत की रक्षा करना प्राणिमात्र का परम कर्तव्य है।

(२)

लाला हरजूमल की हवेली के सामने इमली का जो विशाल वृक्ष है, उसके नीचे चार व्यक्ति बैठे तमाकू पी रहे हैं। उनमें से एक तो वही कोचवान है, शेष लाला हरजूमल के लठैत। कोचवान को यहाँ आए दूसरा दिन है। इस बीच में आज संध्या-समय ही वह हवेली से बाहर निकला है, और हरजूमल के लठैतों से बात कर रहा है। चारों खूब चौकन्ने होकर बैठे हैं। धीरे-धीरे बात कर रहे हैं, मानो किसी विपत्ति की छाया उनके सम्मुख है। करीम—वही कोचवान—उन लोगों को झांसी के विद्रोह की आँखों-देखी लोमहर्षण कहानी सुना रहा है। किस प्रकार सिपाहियों ने विद्रोह का झंडा खड़ा किया, बलवे की आग किस तरह सुलगी, किस तरह बलवाइयों ने अंगरेज़ अफसर और उनके बाल-बच्चों का निर्दयता-पूर्वक वध किया, किस प्रकार महारानी ने तरस खाकर अवशेष अंगरेज़-स्त्रियों और बच्चों को राजमहल में आश्रय दिया और किले में छिपे हुए अंगरेज़ों को किस गुप्त रीति से सहायता पहुंचाती रहीं, इसके बाद विद्रोहियों ने किस प्रकार महारानी को राजमहल में घेर लिया, और महारानी ने उनसे अपना पिंड छुड़ाया। अन्त में उसने अपनी राम-कहानी सुनाई। किस तरह वह इन अङ्गरेज़ों को लेकर अपने घर में घास के ढेर के भीतर दो दिन तक छिपा रहा, और किस तरह उन्हें बचाकर यहां ले आया, इत्यादि।

कहानी लंबी थी, और लठैत भय एवं आश्चर्य-मिश्रित एकाग्रता से उसे सुन रहे थे। सहसा पीछे किसी के भारी पैरों की आहट सुनाई दी। चारों ने ऊपर नज़र की। दो लट्ठबन्द जवान उनके सामने थे। कमर में तलवार, हाथों में आदम-कद, मज़बूत लट्ठ। चारों की दृष्टि जहां-की-तहां थम गई। कुछ पूछना चाहते थे, इसके पहले ही नवागंतुकों में से एक ने अपनी भारी आवाज़ में कहा—"हरजूमल है?"

लठैतों में से एक ने कहा—"नहीं हैं।"

"कहां गए हैं?"

"गोपालपुरा।"

"कब आवेंगे?"

"पता नहीं। तुम अपना मतलब कहो।"

"हमारा मतलब तो सीधा है। वह हरजूमल के बिना भी सिद्ध हो सकता है। परसों यहां सात अंगरेज़ आए हैं। इसी चौपहिया गाड़ी पर, जो यहां रक्खी है।"

सुनते ही करीम के पैरों-तले की ज़मीन खिसक गई। आंखों के सामने अन्धेरा छा गया। वह अपनी जगह पर प्रकृतिस्थ खड़ा रहा, यही बड़ी बात थी।

वह लट्ठबन्द व्यक्ति कहता गया—"हरजूमल ने उनको अपनी हवेली में छिपा रक्खा है। राव साहब को पक्की खबर मिली है। हम उन्हीं अंगरेज़ों को चाहते हैं। कहां हैं वे लोग? बोलो।"

अब तक तीनों लठैत उठकर खड़े हो गए थे। एक ने महान् आश्चर्य की मुद्रा बनाकर गंभीरता-पूर्वक उत्तर दिया—"कैसे?

कहां के अङ्गरेज़ ? आप क्या कह रहे हैं ? राव साहब को गलत खबर मिली है। हवेली में तो कोई नहीं है। यहां कोई अङ्गरेज़ नहीं है। आया भी हो तो हमें क्या पता ?"

पहला आगन्तुक त्यौरी बदल कर बोला—"देखो, इन व्यर्थ की बातों में कुछ नहीं रक्खा। हरजूमल इस मामले में हैं, नहीं तो हमारे पास ऐसी दवा है कि तुम तो क्या, तुम्हारे पीर आकर बताएंगे कि हरजूमल ने अङ्गरेज़ों को कहाँ छिपा रक्खा है।"

वही लठैत संभलकर बोला—'हवेली पड़ी है, आप खुशी से देख सकते हैं। एक घर, जहां स्त्रियाँ हैं छोड़ घर सब जगह जाइए। अथवा आपकी मर्ज़ी हो, तो स्त्रियां बाहर आ जायंगी। अभी प्रबन्ध किए देता हूँ।"

दूसरा आगन्तुक बोला—"अङ्गरेज़ हवेली में नहीं हैं, यह तो मान लिया; मगर यह चौपहिया गाड़ी तो उन्हीं अङ्गरेज़ों की है, जो परसों उरई से यहां भागकर आये हैं। इसके पहले गाड़ी यहां नहीं थी। क्या कहते हो ?" और वह तीखी नज़र से लठैत के मनो-भावों को ताड़ने का प्रयत्न करने लगा।

लठैत सचमुच कुछ अचकचा गया। करीम ने तुरन्त उत्तर दिया—"हरजूमल ने अभी खरीदी है कानपुर के एक व्यापारी से।'

आगंतुक ऊंचे स्वर से हंस पड़ा—'ठीक कहते हो खां साहब ! हरजूमल ने कानपुर या झांसी के जिन व्यापारियों से यह सौदा किया है, हम उन्हीं को चाहते हैं। सीधे-साधे बता दो कहां हैं, नहीं तो तुम्हारी दाढ़ी की आज खैरियत नहीं।"

तीनों लठैत एक कदम आगे बढ़ आए एक ने अपना लट्ठ

संभालकर कहा—"देखिए साहब, ज़बान काबू में रखिए, आपको राव साहब का आदमी समझकर हमने कुछ नहीं कहा, नहीं तो हमारे मालिक की भी इतनी इज्ज़त है कि उनके नौकरों से आप तू-तड़ाक करके नहीं बोल सकते। यहाँ अङ्गरेज़-बंगरेज़ नहीं हैं। राव साहब से कह दीजिये।"

पहला आगंतुक कड़ककर बोला—"हैं, या नहीं, यह अभी मालूम हुआ जाता है।" उसने मुंह से एक विशेष संकेत किया। गली में छिपे हुए बीस-पचीस ज़वान सामने आगए। करीम और उन तीनों लठैतों के नेत्रों के समक्ष मानो अन्धेरा छा गया। उसी पहले लट्ठबन्द ने कहा—"अब क्या कहते हो?"

हरजूमल के एक लठैत ने जवाब दिया—'जो पहले कहा था।'

उसने एक बलवाई को संकेत करके कहा—"रज्जब, अपने पास इतना समय तो है नहीं कि हरजूमल की हवेली की भूल-भुलैयों में घण्टों ठोकरें खाते फिरें। यह देखो, उस गाड़ी के पीछे बहुत सी घास रक्खी है। उससे काम न चले, तो तेल के कनस्तर लाओ। स्त्रियों से हमें कोई प्रयोजन नहीं। खबर कर दो कि सब बाहर आ जाएं। और, फिर हवेली में आग लगा दो। देखें, अंगरेज़ हैं, या नहीं।" करीम घबरा उठा। तब तक दूसरे ने कहा—"मगर एक इससे भी आसान तरीका है। हवेली क्यों जलाई जाय? रज्जब, वह सब घास इस पेड़ के नीचे लाओ, और चार रस्से तलाश करो। मुझे मुरदे के मुंह से भी बात कराने का मन्त्र मालूम है, समझे। हरजूमल के ये चार नौकर तो चीज़ ही क्या हैं?"

किसी ने भी इसे धमकी नहीं समझा। बाग़ियों ने भी नहीं,

और इमली के उस विशाल वृक्ष के तले खड़े हुए उन चार प्राणियों ने भी नहीं। पेड़ से टाँगकर जीवित जलाए जाने की कल्पना-मात्र से लठैतों का सर्वांग कंटकित हो गया ! उन्होंने व्याकुल दृष्टि से एक दूसरे के प्रति देखा, और मानो कहा—"अब क्या हो ?" फिर उस कोचवान को देखा। परन्तु इस एक क्षण के भीतर ही उसकी समस्या मानो हल हो चुकी थी। वह प्रसन्न था, और उस प्रसन्नता के भीतर जीवित जल मरने की दृढ़ता और पवित्रता प्रतिफलित हो रही थी। करीम के चेहरे के इस भाव ने उन लठैतों को संक्रामित किया। उनके दुर्बल हृदयों को बल और साहस प्रदान किया, उनके लिये उस जगह जीवित जल कर मर जाना सहज कर दिया। लठैतों ने अपने को संभाल लिया। मृत्यु के पवित्र तट पर खड़े हुए उन तीन व्यक्तियों की निश्चल मूक दृष्टियाँ अन्त समय तक एक दूसरे के प्रति सत्यशील बने रहने की शपथ-सी ले ली। और यह कार्य चुपचाप सबके अनजान में ही संपन्न हो गया।

रस्से आ गये। बीस के सामने चार को कुछ नहीं चली। बलवाइयों ने उन चारों को पेड़ से उलटा टांग दिया। नीचे घास का ढेर रख दिया, और आग लगा दी। ग्रीष्म-ऋतु की प्रबल वेगवान वायु की सहायता पाकर घास तुरन्त धू-धू करके जल उठी। अग्नि की ज्वालाएं उन चार व्यक्तियों के शरीर को क्रोड़ में भर कर ऊपर लपकीं। इमली के पत्ते झुलसने लगे, और उस वृक्ष के कोटरों में निवास करने वाले पक्षी त्रस्त-व्यस्त होकर इधर उधर उड़ गए। नीचे से ऊपर तक धुएं का घटाटोप छा गया।

चार में से तीन व्यक्तियों के अधजले शरीर रस्सी जल जाने के कारण प्रज्वलित घास के ढेर में गिरकर भुनने लगे, मगर उन्होंने मुंह से 'उफ्' तक नहीं की।

करीम अब भी लटका हुआ था। विद्रोही अब भी इस क्रूर लीला पर अन्तिम पटाक्षेप करके ही वहाँ से जाना चाहते थे। उन्हें अन्त तक आशा थी कि यह बूढ़ा मुसलमान अवश्य कुछ भेद बतायगा। परन्तु करीम कह रहा था—"मैं कुछ नहीं जानता। मैं कुछ नहीं जानता। मैं कुछ नहीं जानता। कुरान की कसम, मैं कुछ नहीं जानता।"

करीम के मस्तक के बाल चिट्-चिट करके जल उठे, और उनकी दुर्गन्ध से आसपास का वायु व्याकुल हो उठा।

धुआं हवेली की सबसे ऊंची मंज़िल तक पहुंच चुका था। उस मंज़िल के एक सबसे छोटे झरोखे में किसी के दो भूरे नेत्र थोड़ी देर तक चमककर फिर अन्तर्धान हो गये। जिस अन्धेरी कोठरी का वह झरोखा है, उसमें द्वार का पता नहीं चलता। उसमें सात प्राणी बैठे मानो चारों ओर यमदूत की परछाइयां देख रहे हैं। उनमें से एक ने झरोखे से सिर अलग करके जीवन्मृत-जैसे व्यक्ति के स्खलित स्वर में कहा—"बागी हैं।"

सुनते ही उस अन्धेरे में सबके चेहरे स्याह पड़ गये।

"करीम को जला रहे हैं।"

"जला दिया ?"

"हां।"

"वह कुछ कहेगा तो नहीं, धोखा तो नहीं देगा ? हे भगवान,

रक्षा करो, रक्षा करो।"

"नहीं, वह धोखा नहीं देगा।"

वे दोनों भूरे नेत्र फिर झरोखे के पास आ लगे।

उसी समय करीम की निर्जीवप्राय, अधजली देह घास के ढेर पर गिर पड़ी। करीम के प्राण-पखेरू उड़ गये।

वे दोनों नेत्र फिर झरोखे से गायब हुए। उस कोठरी में एक अस्पष्ट लहर उठी—"करीम मर गया!"

"मर गया?"

"हां।"

सातों प्राणियों ने एक लम्बी साँस छोड़ी। वह सांस झरोखे से बाहर निकलकर करीम के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करने के लिए मानो उसकी स्वर्गीय आत्मा का अनुगमन करने चली।



[११]

उन्माद

(श्रीमती कमला चौधरी)

"बाबूजी, दाता तुम्हारा भला करे, वैद्यजी के कानों तक मेरी पुकार पहुंचा दो। मैं घंटे-भरसे एक एक की खुशामद कर रहा हूँ, कोई मुझ गरीब पर रहम नहीं करता। बाबूजी, तुम ही दया करो। मेरे लड़के को हैज़ा हो गया है। रातसे तड़प रहा है। यह वक्त हुआ, अब तक दवा-दारू नसीब नहीं हुई।"—रोकर लक्ष्मण भंगी ने एक बाबू साहब से कहा।

"हट अलग, चिपटा क्यों जाता है? सुबह-ही सुबह नहलायेगा क्या? वैद्यजी तेरी पहले तो ज़रूर सुनेंगे न! आखिर हम लोग कचहरी-दफ्तर वाले भी तो खड़े हैं।"—इस प्रकार डपटकर त्योरियों पर बल डाले, बाबू साहब दवाखाने के अन्दर चले गये।

बेचारा लक्ष्मण पुत्रके इलाज के लिए रोता कलपता खड़ा रहा। जो व्यक्ति दवा लेने आता, लक्ष्मण उसी के कदमों की बलाएँ लेता हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाता, उसके कल्याण के लिए सैंकड़ों असीसें देता; पर किसीके हृदय में उसके प्रति इतनी दया न आई कि वैद्य जी तक उस दीनकी फरियाद पहुंचा देता। कोई बहुत कृपा करता, तो दो-चार शब्दों से उसे सान्त्वना दे देता; और जिन धर्मात्मा महापुरुषों को अपनी मान-मर्यादा का ध्यान था, वे भला किस प्रकार खड़े होकर अछूतकी एक बात भी सुन सकते! सारांश यह कि सब ही अपना-अपना मतलब साधने में व्यग्र थे। "किसी तरह वैद्यजी पहले मुझे देखकर दवा दे दें"—ऐसी ही युक्तियां सोच रहे थे। फिर उस बेकस भंगी की फरियाद सुनने में कौन अपना अमूल्य समय नष्ट करता?

करीब डेढ़ घंटे तक लक्ष्मण इसी प्रकार दवाखाने के दरवाजे पर एक कोने में खड़ा रहा। आज उसे अपनी दशा का स्मरण कर हज़ार बिच्छुओं के डंक मारने-जैसी पीड़ा का अनुभव हो रहा था। मनुष्यों की भांति उसे भी प्रकृतिने सब शक्ति प्रदान की है; पर सब व्यर्थ! एक अछूत के लिए शारीरिक शक्ति और मानसिक बल का होना, न-होना समान है। उसका रूप मनुष्य का-सा भले ही हो, पर उसकी दशा एक पशु से भी निकृष्ट है। वह इतना निस्सहाय है, ऐसा निर्बल है, कि मेहनत से पैसा कमाकर भी उसका उचितरूप से उपयोग नहीं कर सकता धर्मके दरबार में एक अछूत को यह अधिकार कहाँ है कि वह छूत जाति के वैद्यके द्वारा अपनी सन्तान की प्राण रक्षा का भी कुछ उपाय कर सके?

वैद्यजी के दवाखाने से जो रोगी दवा की शीशी हाथ में लेकर निकलते, लक्ष्मण उन्हें लालसा भरी दृष्टि से देखता। आज उसे शीशी में दवा नहीं, अमृत नज़र आ रहा था। वह नित्य ही झाड़ू लगाते समय यह दृश्य देखता था, परन्तु आज तक कभी उसने यह अनुभव नहीं किया था कि शीशी के अन्दर का रंगदार पानी उसके लिये एक दुर्लभ वस्तु है, और न आजकी भांति और किसी दिन उसकी आँखें उस वस्तु के प्राप्त करने वाले को ही इतना भाग्यशाली मानने को तैयार होती थीं। मगर आज संसार की सारी न्यामतें इस शीशी के सामने उसे फीकी जान पड़ती थीं। इस समय वह अपने प्राण-तक न्योछावर करके दवा की शीशी खरीदने को तैयार था। इसी चीज़ में तो वह शक्ति भरी है, जिसके सेवन से उस के प्यारे पुत्र मनुआ के प्राण बच सकते हैं—यह उसकी धारणा थी।

जिस चीज को दूसरे लोग कुछ पैसा खर्चकर इतनी सुगमतासे प्राप्त कर लेते हैं, लक्ष्मण सुबहसे तपस्या करके भी उसे न पा सका! मालूम नहीं, कब तक वह इसी भांति अपनी उद्देश्यपूर्ति के के लिये दवाखाने के दरवाज़े पर आँखें बिछाये खड़ा रहता; पर सहसा अपने बाप की आवाज़ कान में पड़ते ही वह चौंक पड़ा—"अरे लक्ष्मण! आखिरी वक्त मनुआ का मुंह देखना हो, तो घर चलकर देख ले।"

लक्ष्मण के शरीर में किसीने मानो बिजलीका तार छुआ दिया हो। दवा पाने की आशा में वह ऐसा लीन था कि उसे यह सुध ही न थी कि घर पर बच्चे का क्या हाल होगा। पिता की आवाज़

सुनते ही बेसुध हो घर की ओर दौड़ा।

'बप्पा, दवा लाए ?''—अन्तिम शब्द बच्चे के मुंह से निकले। सुबह से मनुआ ने आंख भी न खोली थी, बेहोश पड़ा था। अब होश आया और बोला भी। यह देखकर सबके मन में आशा का संचार हुआ, शायद बच जाय! पर क्षण ही भरमें मृत्यु लक्षण प्रकट होने लगे। मनुआ जीने के लिये होश में न आया था, बल्कि सदा को बेहोश होने के लिये। उसके वे अन्तिम शब्द लछमण के हृदय में तीर की तरह लगे।

"जैसे भी हो, बेटा तेरे लिये दवाई लाता हूं।"—यह कहकर लछमण पागल की भांति भागा। लोग चिल्लाते-पुकारते रह गए—"अरे, अब मत जा, किसके लिये दवा लायगा ? थोड़ी देर और पास बैठ ले, लौट आ।"

लछमणके कानों ने शायद दूसरों का चिल्लाना-पुकारना सुना ही नहीं। उसके पैर हवा से बातें कर रहे थे। उसका उछलता हुआ हृदय 'दवा-दवा चिल्ला रहा था। पलक मारते वह वैद्यजी के दवाखाने में घुस गया, और वैद्य जी के पैरों पर गिरकर कलपने लगा—"वैद्यजी, अभी मनुआ में प्राण बाकी हैं, तुम दवा देकर उसे बचा लो। मैं जन्म-भर तुम्हारा गुलाम बना रहूँगा। जो कुछ कहोगे, जान बेचकर चुकाऊंगा। इस वक्त मनुआ को मारना-जिलाना तुम्हारे हाथ है। मेरे भगवान तुम हो गरीब पर दया करो।"

भंगी के अन्दर घुस आने से शोरगुल मच गया, मानो कोई जानवर सबको हड़पने के लिए दौड़ आया हो। सभी लोग अपवित्र

होने के डर से दूर भागने लगे। वैद्यजीका तो कहना ही क्या था? उन्हें तो पैर छूकर उसने अपवित्र हो कर दिया। क्रोध के आवेश में बोले —"अरे चण्डाल किसकी आज्ञासे तू अन्दर घुस आया? ऊपर से अमीरी बघारता है, 'जो माँगोगे, वह दूंगा!' अन्धा हो गया है क्या? यह सैंकड़ों रुपयों की दवाएं और यह सारा सामान जो छूत हो गया, इसकी कीमत क्या तू चुका सकता है?"

"महाराज कसूर हुआ, मुझे घबराहट में ध्यान न रहा। हजूर, मेरे सौ जूते लगवा लें, जिस तरह होगा, ताबेदारी में कसर न करूंगा। आप माई-बाप हैं, मगर जल्दी से दवादे दें। देर करने से आपका मनुआ सदा के लिये चल बसेगा। महाराज, जल्दी करो, गरीब से कसूर हुआ, माफ करो।" कांपते हुए लच्मण ने कहा।

"क्या तुझे कभी दवा मिली न थी? बाहर न बैठकर अन्दर कैसे घुस आया?" उसी प्रकार क्रोध से कांपते हुए वैद्य जी ने कहा।

"हजूर, मैं घण्टों फाटक पर खड़ारहा। आप कमपोडर साहब से पूछ लें। मैं सवेरे से एक-एककी मिन्नत खुशामद कर रहा हूं! मनुआको रात से हैजा हुआ है, बिलकुल स्याह पड़ गया है। सरकार, गुस्सा फिर हो लेना, दवा दे दो। हा-हा खाता हूं। तुम्हारी दवा से मनुआ के प्राण बच जायंगे, यह मेरा मन कहता है।"

यह कहकर लच्मण ज़ोर से रो उठा। उसके हृदय में वे शब्द गूंज रहे थे—"बप्पा, दवाई लाए?" रात-भर बच्चे को वह यह कह कर दिलासा देता रहा था—"भैया, सूरज निकलते ही तेरे लिए

दवा लाऊंगा, सवेरे ही तू अच्छा हो जायगा।"

इस समय लक्ष्मण की दशा देख कर पत्थर भी पसीज उठता, वैद्यजी तो आखिर मनुष्य थे। सारा रोष दबा कर दवा का नुस्खा लिखने लगे इसी समय फिर बाहर से लक्ष्मण के बूढ़े बाप केरोने का शब्द सुनाई पड़ा—"लक्ष्मण, अब किसके लिये दवाई लेनी? मनुआ तो विदा हो चुका!"

लक्ष्मण बाहर को भागा। वैद्यजी के हाथसे कलम गिर पड़ी।

(३)

दो-एक दिन नहीं मनुआ को मरे आज पन्द्रह दिन बीत गये। लक्ष्मण का बूढ़ा बाप और उसकी स्त्री रो-पीटकर अपने-अपने काम में लगगये। संसारकी गति ही ऐसी है। कौन किसे याद करे? कौन किसके लिए कहाँ तकरोये? ईश्वर अपने नियमानुसार सबको धैर्य देता है; लक्ष्मण का रोना और लोगों से कुछ निराले ही ढंग का था। जिस घड़ी से वह मनुआ का अन्तिम संस्कार कर के लौटा, वैद्य जी के दरवाजे पर कोने में खड़ा रहता, उसी प्रकार आने-जाने वालों की मिन्नतें करता और यही वाक्य दुहराता—बाबू जी! दाता तुम्हारा भला करे। वैद्यजी तक मेरी पुकार पहुंचा दो। मेरे मनुआ को हैज़ा हो गया है।"

लोग कहते थे कि वह पुत्र के शोक से पागल हो गया है। अगर वह पागल था, तो उसका पागलपन भी विचित्र था मुंह पर तनिक भी उन्माद के लक्षण प्रकट न होते थे, पर करुणा टपकी पड़ती थी। कोई दुरदुराये, चाहे धमकाये, माथे पर शिकन न आती थी, वही दीनता का भाव दिखाते हुए हाथ जोड़कर, वेदनायुक्त स्वर में, सब के सामने गिड़गिड़ाता। सड़क के लड़के

'पागल-पागल' कहकर उसे चिढ़ाते, ईंट-पत्थर मारते, तब भी वह शान्ति और करुणा की मूर्ति बना स्थिर खड़ा रहता, और बार-बार यही कहता— "वैद्यजी तक मेरी फरियाद पहुंचा दो।"

वैद्यजी उसके पागलपन से अत्यन्त चिंतित थे। वह दवाखाने में सुबह से शाम तक पड़ा रहता। मरीज़ों से यह करुणाजनक दृश्य देखा न जाता, इसी लिये वे आते डरते थे। जो आते भी, वे और हाल पीछे कहते, वैद्यजी से यह शिकायत पहले करते—"वैद्यजी, किसी तरह इस पागल को यहाँ से हटाने का उपाय कीजिये। यहां तक आना कठिन हो जाता है। देखते ही पैरों पर गिरने दौड़ता है। यह जानते हुए भी कि पागल है, उसका रोना देखा नहीं जाता। सुबह यहाँ आनेसे दिन-भर चित्त खराब रहता है। आंखों के सामने यही दृश्य घूमा करता है।"

वैद्यजी स्वयं न मालूम क्यों उसकी दृष्टि से बचते थे। चोरकी नाईं दूसरे द्वार से दवाखाने के अन्दर चले जाते, और उसकी नज़र बचाकर धड़कते हृदय से, घर लौट जाते। सोते-जागते लछमण ही की करुण मूर्ति सामने रहती। खाने बैठते, खाया न जाता, सोने जाते, नींद न आती;—रात-भर बिस्तरे पर करवट बदला करते। किसी काम में मन न लगता। रह-रहकर यही ध्यान आता—"उस दिन सुनकर मैंने अनसुनी कर दी। मारना-जिलाना तो ईश्वर के अधीन है; पर उस रोज़ यदि मैं और रोगियों को छोड़ कर पहले इस दीन की सुन लेता, तो मरने वाला तो मरता ही, पर वह पागल न होता, और होता भी, तो वह उन्माद इस ढङ्ग का न होता। कम-से-कम मैं इस कलङ्क से तो बच जाता।

अब तो जिसे देखो, मुझे ही धिक्कारता है, और दूसरे क्यों, स्वयं मेरी आत्मा ही मुझे धिक्कारती है।" दूसरी चिंता अपनी प्रैक्टिस की थी। दवाखाने का स्थान भी बदलने का साहस न होता था। लोग और भी खिल्ली उड़ायेंगे। यदि मरीज़ों के दिल में पागल का ऐसा ही भय कुछ दिनों और रहा, तो खाऊंगा क्या? इन चिन्ताओं ने उन्हें बहुत परेशान कर दिया। लक्ष्मण के पिता को बुलाकर दवा दी कि उसे खिलाओ और कहीं बाहर ले जाओ; राहखर्च मैं दूंगा। सम्भव है जलवायु बदलने से इसका दिमाग ठीक हो जाय।

मगर सारी कोशिशें व्यर्थ हुईं। किसी में वह शक्ति न थी, जो क्षण-भर के लिये भी लक्ष्मण को द्वार के सामने से हटा सकता। दिन की धूप, रात की ओस सर पर बीत जाती। मुंह में न अन्न का दाना जाता, न पानी की बूंद। रात में मौन धारण किये चुप पड़ा रहता। ज्यों ही सड़क पर लोगों का आना-जाना शुरू होता, त्यों ही उसका वह राग भी शुरू हो जाता और रात में जब तक लोगों का आना-जाना बन्द न होता वह अपना राग अलापता रहता। दिन-पर-दिन उसका चिल्लाना बढ़ता जाता था! उसकी चिल्लाहट से जो वेदना की ज्वालाएं निकलतीं, अब वे सही न जातीं। लोगों ने वैद्यजी को सलाह दी, इसे पागलखाने भिजवा दो। लक्ष्मण के पिता ने भी रोते हुए अपनी राय दे दी—"शायद वहीं कुछ सुधर जाय।" पर वैद्य जी को साहस न हुआ। यदि कोई कहता, पुलिस की सहायता से इसे शीघ्र भिजवा दीजिये, तो कह देते—"हां, देखो, प्रबन्ध कर रहा हूं।"

एक दिन बहुत तड़के वैद्य जी के पास तकलीफ से कलपता

हुआ एक रोगी आया। वैद्य जी स्वयं चाबी लेकर दवाखाना खोलने गये। मार्ग में सोचते जाते—"कहीं पागल देख न ले।" दूर ही से उन्होंने द्वार के कोने में टार्च से रोशनी डाली। आज कोना खाली था। उनकी जान में जान आई; शायद पागल आज कहीं दूसरी जगह चला गया, नहीं तो इस जगह से हटता कब था। टार्च जेब में डालकर द्वार खोलने आगे बढ़े, तो किसी ठण्डी वस्तु से पैर ठुकरा गया। फिर टार्च से रोशनी की। "अरे, पागल!"—वैद्यजी के मुंह से धीमी-सी चीख निकल गई। सारा शरीर कांप उठा। फिर तुरन्त ही अपने को सम्हाल कर लच्मण को देखने लगे।

शायद लच्मण की तपस्या आज पूर्ण हो चुकी थी। उसका सारा शरीर बर्फ-सा ठण्डा पड़ा था। आंखें पथरा गई थीं। हल्की-हल्की सांस चल रही थी। वैद्यजी के समझने को कुछ बाकी न रहा। माघ मास के भीषण जाड़े की रातों की ओस सहते-सहते आज शरीर की अग्नि जवाब दे गई है? कैसा करुणाजनक दृश्य था! वैद्यजी ने कठिन रोगों से पीड़ितों का अन्त देखा था; पर आज इस प्रकार सर्दी से ठिठुर कर, उनके द्वारपर, उन्हीं की प्रतीक्षा में प्राण विसर्जन करना देखकर वे अपने को सम्हाल न सके। लच्मण को गोद में उठाकर एक बेंच पर लिटा दिया, और उसकी चिकित्सा करने लगे।

दिन निकलते लोगोंने देखा कि वैद्य जी आंखें मुंदे अचेतन से चुप बैठे हैं। मृत लच्मण का सिर उनकी गोद में है। क्या यह उसी लच्मण का शरीर था, जिसके डरसे वैद्यजी चोरों की भांति इस दवाखाने में आते-जाते थे?

[१२]

उजाला

(कुमारी सरलादेवी)

अमावस की रात्रि में गाड़ी धरती के वक्ष को चीरती हुई भागी जा रही थी—छका-छक, छका-छक। वायु तीव्र गति से सन-सन करती गाड़ी के डिब्बों से टकरा रही थी। गहरे अन्धकार के सन्नाटे में केवल यही दो छक-छक सन-सन की आवाज़ें थीं, जो रात्रि की निस्तब्धता को भंग कर रही थीं। बाहर शेष सब मौन था। गांव, छोटे-छोटे टीले, नदियाँ, पेड़ सब मौन थे। वे चुपचाप गाड़ी के सामने आते और फिर चुपचाप मीलों पीछे रह जाते—अन्धकार में गुम हो जाते।

गाँव, टीले; नदी, नाले और पेड़ ही मौन नहीं थे, बल खाती हुई गाड़ी की पटरी भी मौन थी। आकाश पर सितारे भी मौन थे।

सारी प्रकृति मौन थी। किन्तु जिस जनाने डिब्बे में ज्वाला थी, उस डिब्बे में बैठी हुई स्त्रियाँ मौन नहीं थीं। डिब्बा खचाखच भरा हुआ था। उसमें विभिन्न प्रदेशों की स्त्रियाँ थीं—सिन्धनें, पंजाबिनें, मराठनें। शक्ल-सूरत से सभी धनवान और उच्च घरानों की जान पड़ती थीं। उनके तन पर रेशमी वस्त्र और बहूमूल्य आभूषण, बटुओं में नोटों के बंडल। ज्वाला और एक अन्य लड़की के सिवा बाकी सब अधेड़ आयु की थीं। यौवन ने उनका साथ छोड़ दिया था, किन्तु इस पर भी उनके बनाव-सिंगार में कोई अन्तर नहीं आया था। सिन्धनों ने साटन के पाजामें और करेप के कुरते और पंजाबिनों ने लट्ठे की सलवारें, सिल्क की चुस्त कमीज़ें, सफेद बारीक मलमल के दुपट्टे कंधों पर डाल रक्खे थे। मराठनों ने झिलमिलाते बार्डरों वाली साड़ियां लंगोट बना कर बांधी हुई थीं। ज्वाला को यह पहनावा सबसे बुरा लगा। कम्बख्त साढ़ी का सत्यानाश कर देती हैं। आगे से तो खैर अच्छी लगती हैं, किन्तु पीछे से उनके भारी-भारी निकले हुए कूल्हों को देख कर मन मतलाने लगता है और लज्जा से आँखें बन्द कर लेने को मन चाहता है।

सभी स्त्रियां अपनी-अपनी भाषा में बातें किये जा रही थीं। पंजाबिनें सब से अधिक ऊंचे स्वर में बोल रही थीं—जोर जोर से हाथ हिला कर, नाक चढ़ा कर और आँखें मटका-मटका कर। ज्वाला को लगा जैसे बातों का तूफान उमड़ आया हो। यह बातें भी अजीब तरह की थीं। बहुओं की निन्दा, सासों की निन्दा, युवक-युवतियों की निन्दा। बस, निन्दा के अतिरिक्त मानों और

कोई विषय ही बात करने को नहीं था। ज्वाला सोचने लगी—आखिर मनुष्य सदा आठों पहर दूसरों की बुराई क्यों करता रहता है? हरेक अपने को अच्छा और दूसरों को बुरा क्यों समझता है? अपनी कमज़ोरियों का ध्यान क्यों नहीं करता? अपने भीतर झाँक कर अपने दोषों को क्यों नहीं देखता?

पंजाबिनें अकस्मात् खामोश हो गई थीं। कुछ देर बाद ज्वाला का ध्यान निकट बैठी हुई एक मुसलमान पठान स्त्री की ओर आकृष्ट हुआ। वह स्त्री बहुत अच्छी हिन्दुस्तानी बोल रही थी। उसकी आयु पचास के लगभग होगी। गोरा रंग, तीखे नयन-नक्श, गले में सोने का चमकता हुआ गुलूबन्द, कानों में लम्बे-लम्बे बुन्दे, काली करेप की सलवार, 'आँख के नशे' की कमीज़ और उस पर सफेद नून का दुपट्टा, केशों में मेंहदी, बुर्का कन्धे पर। बात-चीत से वह बिल्कुल पठान प्रतीत नहीं होती थी। उसका पहनावा भी तो पठान स्त्रियों जैसा नहीं था। फिर भी कोई व्यक्ति कैसा भी लिबास पहने हो, रूप-रंग और चेहरे की बनावट से पता चल ही जाता है कि वह कहाँ का रहने वाला है।

एक पंजाबिन बोली, "तो बहिन, तुम बम्बई से आ रही हो?"

"हाँ, बहिन! अपना अपना भाग है, जिस से न पूछो, वही इस दुनिया में सुखी है। मैं चार बरस के बाद अपने बेटे के पास गई थी। क्या करूं, मां जो हूँ, औलाद के लिये ममता जाग उठती है। पहले मैंने सोचा, बुलायेगा तो जाऊंगी, किन्तु क्या बताऊं, जमाना बुरा होता जा रहा है। लड़के माँ-बाप को भूलते जा रहे हैं। बस, इन आजकल की छोकरियों के पीछे पड़ गये हैं।"

"ठीक कहती हो, बहिन !" पंजाबिन ने झट हां में हाँ मिलाई और ज्वाला ने देखा कि यह सुन सामने कोने में बैठी हुई युवती के अधरों पर एक चंचल मुसकान फैल गई।

पठान स्त्री बोली, "इन छोकरियों का मिजाज तो देखो, कहती हैं हम पर किसी तरह की पाबन्दी न डालो, हमें नौकरी करने दो, सिनेमा देखने दो, शर्म-हया को पानी की तरह पीने दो...। खुदा की मार पड़े आजकल की इन छोकरियों पर !"

"खुदा की मार तो खूब पड़ी। देखो न इन फसादों में स्त्रियों की क्या दुर्दशा हुई है। घर से बेघर हुईं, पैसा गया, कपड़ा गया, इज्जत गई। इनके नंगे जलूस निकाले गये, कोई इन्हें भगा कर हिन्दुस्तान ले आया और कोई पाकिस्तान ले गया," यह कह पंजाबिन ने घृणा से अपना अच्छा-खासा मुह बिगाड़ लिया।

"बहिन, सब माँ-बाप का दोष है," पठान स्त्री बोली, "क्या मजाल जो मेरी लड़कियां कभी सिर भी नंगा कर जायें। गर्दन न उतार के रख दूं। खुदा के फजल से चार लड़कियां हैं और एक लड़का। आप यकीन करिये, अगर मेरी लड़कियों ने कभी सिनेमा तक देखा हो। स्कूल-कालिज की शक्ल तक नहीं देखी। वैसे मैंने खुद इन्हें घर पर कुरान-शरीफ पढ़ाया है। स्कूल में जाकर लड़कियां अक्सर खराब हो जाती है। औरत जात आज़ादी के के लायक नहीं। अब देखो न, ज़रा-सी आजादी मिलने पर इन्हें क्या पर लग गये हैं—जिधर देखो, मुह पर रंग पोते, बिना आस्तीनों के जंपर पहने, तरह तरह के ऊंचे नीचे बाल बनाये,

सड़कों पर, हाट-बाज़ारों में घूमती फिरती हैं। मेरे अल्लाह, जो मर्दों के काम हैं, सभी इन्होंने संभाल लिये हैं। आफिसों तक में नौकरी करती हैं, पढ़ाती हैं, नाचती हैं, गाती हैं, सिगरेट पीती हैं, शराब पीती हैं...।"

"तभी तो यह प्रलय आई थी," पंजाबिन ने चमक कर कहा।

"लेकिन अब भी कौन-सी बाज आ गई हैं...," बात करते-करते एकाएक पठान स्त्री चुप हो गई। उसकी दृष्टि सामने वाली सीट पर लेटी हुई अपनी युवा लड़की पर जम गई। वह बेचारी इन अंटसंट बातों से बेखबर आराम से सो रही थी। सोते में कहीं उस की सलवार का एक पांयचा घुटने तक ऊपर उठ गया था और उसकी गोरी-गोरी पिंडली निरावरण हो गई थी। मां ने जो देखा तो चिल्लाई, "सदीका, सदीका, कैसे टांगें खोले पड़ी हो? कम्बख्त, अपने जिस्म को तो ढांप।"

किन्तु सदीका उसी प्रकार सोती रही। उसके ऊपर के ओंठ पर पसीने की नन्ही-नन्ही बून्दें चमक रही थीं, निचला ओंठ आर्द्र था और काँप रहा था, मानों स्वप्न में सदीका समस्त बन्धनों को तोड़ कर अपने प्रियतम के सामने खड़ी हो।

पठान स्त्री फिर चिल्लाई, "हरामजादी, पिंडली तो ढाँप, तुझ पर खुदा की मार!"

लड़की हड़बड़ा कर उठ बैठी, "मां क्या स्टेशन आ गया?"

"स्टेशन नहीं आयेगा तो क्या तू नंगी पड़ी रहेगी?" माँ का चेहरा क्रोध से लाल हो रहा था।

लड़की ने आश्चर्य के साथ अपनी दृष्टि मां के मुख से हटा कर अपनी पिंडली पर डाली। सचमुच ही उसकी गोरी और सुकुमार पिंडली खुली थी। उसके अधरों पर सलज मुस्कान दौड़ गई। उसने शीघ्रता से पांयचा नीचे खींच लिया।

ज्वाला को उस युवती की यह अदा बहुत भाई। वह सोचने लगी, प्रत्येक सुन्दर वस्तु को आवरण में छिपा कर क्यों रखा जाता है ?

पठान स्त्री फिर पंजाबिन से बोली, "बहिन, बेटे को मिलने का बड़ा चाव था; पर जब उसके पास गई, तो उसका बर्त्ताव देखकर सारा चाव काफूर हो गया। मैंने तो सपने में भी कभी यह न सोचा था कि मेरा बेटा भी ऐसा नालायक हो सकता है।"

"क्या काम करता है तुम्हारा बेटा ?" पंजाबिन ने पूछा।

"भाग जल गये हैं, बहिन! उसने लाइन भी पकड़ी तो कौन सी! म्यूज़िक डायरेक्टर है फिल्म-कम्पनी में आठों पहर तबला और हारमोनियम। इसीलिये तो उसमें पहले-सी बात नहीं रही। अब तो वह तरह-तरह के छोकरों और छोकरियों से घिरा रहता है। मैंने तो यह देख कर सिर पीट लिया। समझाया, बेटा यह क्या करतूतें हैं तेरी। यह सब छोड़, नमाज पढ़ कर खुदा से लौ लगा। तो कम्बख्त बोला, 'मां, यह सब नमाज-सिजदा जंजाल है। मजहब के नाम से तो अब मुझे चिढ़ हो गई है। इसी मजहब और धर्म के लिये तो आज इन्सान ने अपनी इन्सानियत खो दी है और ऐसी नीच हरकतें की हैं कि अब किसी मजहब और धर्म

से सम्बन्ध रखने में शर्म आती है।' अब बताओ, उसके आगे कोई क्या कहे ?"

"मेरा मोहन भी यही कहता है, बहिन !" पंजाबिन ने कहा, "सभी पढ़े-लिखे नौजवानों के दिमाग खराब हो गये हैं। नास्तिक होते जा रहे हैं। मोहन तो यहां तक कहता है कि ऐसे धर्म पर लानत, जो मनुष्य का मनुष्य से सम्बन्ध तोड़ दे। बहिन, संसार का अब अन्त होने वाला है।"

"हाँ, तो मैं तुम्हें अपने बेटे की बात सुना रही थी," पठान स्त्री ने पंजाबिन की बात को अनसुनी करते हुए कहा, "मैंने उसे बहुत समझाया कि पागलपन मत कर; छोड़ इस मिरासीपन को और चल मेरे साथ, तेरा विवाह कर दूंगी, तो कहने लगा, 'मां, मेरी शादी की चिन्ता मत करो। मैंने रजिया से निकाह कर लिया है।' मेरा तो बहिन, यह सुनकर खून खौलने लगा। न मालूम उस छोकरी ने मेरे भोले-भाले बच्चे पर क्या जादू कर दिया है। मिरासिन कहीं की !"

"यही तो लड़के-लड़कियों के खुले-आम मिलने जुलने से बिगाड़ पैदा होते हैं।"

"ठीक है, बहिन ! और मुझको तो गुस्सा इसलिये भी आया कि सामने उस की जवान बहिन बैठी थी। मैंने लड़की को इशारे से अन्दर के कमरे में भेज दिया। फिर मैंने उसे बहुत समझाया कि एक बड़े अमीर घराने की लड़की से तेरी शादी पक्की कर रही हूँ, मेरा जी न दुखा। किन्तु वह टस से मस नहीं हुआ। यह देख मैंने तो वहाँ से चलने की ठानी। क्या करती बहिन, साथ में

जवान लड़की जो थी। डरती थी कि कहीं यह भी उसी रौ में न बहने लगे। क्वारी लड़की की एक बार आप चली जाय, तो बस उम्र के लिये गई।"

"बहिन लड़कों की बात अलग रही," पंजाबिन बोली, "आज कल तो लड़कियां भो माता-पिता के सामने बिना किसो झिझक के कह देती हैं, मुझे फलां लड़के से विवाह करना है। अब देखो न, हमारे हिन्दू धर्म में पहले स्त्री अपने पति के जीवित रहते दूसरे से विवाह नहीं करती थी, चाहे उसे घर से निकाल दिया गया गया हो। किन्तु अब यह भी होने लगा है। हमारे पड़ोस में एक आदमी ने अपनी स्त्री को कुछ वर्षों से छोड़ रक्खा था। उस कलमुंही ने परसों किसी दूसरे आदमी से विवाह कर लिया। सच कहूं बहिन, सत्यानासी के दिन आ गये हैं। आग लगे ऐसी स्त्रियों को, जिनका न लोक न परलोक!"

ज्वाला बड़े मनोयोग से दोनों की बातें सुन रही थी। यह अन्तिम बात सुनी तो मुस्करा कर खिड़की से बाहर मुंह निकाल लिया। वह सोचने लगी—आखिर हमारी सभी मां-बहिनें जब भी इकौट्ठी मिल कर बैठती हैं, यही बातें क्यों करती हैं कि अमुक लड़की बहुत फैशन करती है, अमुक लड़का माता-पिता की आज्ञा नहीं मानता? भला इसके अलावा और कोई बात क्यों नहीं करतीं? समाज की अन्य त्रुटियों को ओर इनका ध्यान क्यों नहीं जाता? आखिर जमाने में और भो तो बहुतेर विषय हैं, उनके सम्बन्ध में ये क्यों नहीं सोचतीं?

ज्वाला अधिक सोचने न पाई थी कि उन दोनों ने फिर वही

घिसा-पिटा पुराना विषय छेड़ दिया। पंजाबिन कह रही थी, "मैं कहती हूँ, जो स्त्री अपने पति के जीवित रहते दूसरे से विवाह कर ले, उसे स्त्री कहना स्त्री-जाति का अपमान है। पूछो, दूसरा पुरुष क्या तुम्हें गद्दी पर बैठा देगा। मिलेगा फिर भी तुम्हें वही जो तुम्हारे भाग्य में लिखा है।"

"खुदा की कसम, बिल्कुल ठीक। क्या बात कही है। वाकई वह अपनी किस्मत को कैसे बदल लेगी? आखिर जो तुम्हारी किस्मत में लिखा है, वही तो हो कर रहेगा।"

और ज्वाला सोचने लगी—यह किस्मत की भी खूब रही। जमाने में जिस से कुछ न हो सका, उस ने झट भाग्य की आड़ ले ली। पति के छोड़ देने पर क्या स्त्री को पुरुष की आवश्यकता अनुभव नहीं होती? कितना अन्याचार होता है स्त्री पर इस संसार में! ज्वाला स्वयं अपने सम्बन्ध में सोचने लगी। दसवर्ष का समय कुछ कम तो नहीं होता। उसने खतम न होने वाले, दिखाई न देने वाले दस वर्ष अपने पति की प्रतिक्षा में काट दिये थे। दस वर्ष पहले वह कितनी लजीली और सुन्दर थी—जीवन की कड़वी हकीकतों से कोसों दूर। उसका अपना हर्षोल्लास से भरा हुआ जीवन था, जिस में आशायें थीं, उमंगे थीं और भावी जीवन की रंगीन कल्पनायें थीं। वह स्कूल में पढ़ने जाया करती थी, झूले पर बैठ कर सावन के गीत गाया करती थी। उसकी सुरीली अवाज सुन कर उसकी सहेलियाँ प्रायः कहतीं—"ज्वाला, तुम्हारा पति तो तुम्हारी जेब में बन्द रहेगा!" इस पर वह खिलखिला कर हंस पड़ती और उसे अपने साथ सारा संसार हंसता हुआ दिखाई देता।

और अभी उस की रातें इन्ही उमंगों-भरे स्वप्नों में और दिन रंगीन कल्पनाओं में व्यतीत हो रहे थे कि उसका विवाह तय हो गया। ज्वाला की प्रसन्नता दुगुनी हो गई। जब उसकी एक सहेली ने बताया कि तुम्हारा दूल्हा रमेशबड़ा सुन्दर है और बम्बई में उस का कारोबार बहुत फैला हुआ है, तो यह प्रसन्नता उस के कपोलों की लाली और आंखों की मादकता बन गई।

फिर एक दिन आया कि वह मां के घर से विदा हो रही थी। "बेटी, अब से तुम्हारा पति ही तुम्हारा सब कुछ है। उस की सदैव वफादार रहना। तुम्हारा मरना-जीना सब कुछ उसीके साथ है"—उस की मां रो रो कर वही जाने-पहचाने वाक्य दुहरा रही थी, जिन पर प्रत्येक विवाहित स्त्री की विपत्तियों की नींव रखी जाती है।

और दस वर्ष तक वह अपने पतिकी वफादार रही थी—ऐसे पति की जिसकी दृष्टि में उसकी वफादारी का कोई मूल्य ही नहीं था दस वर्ष तक वह अपने ससुरालमें पड़ी रही; उसके यौवनका कुन्दन राख होता रहा। पति उसे अपने साथ बम्बई नहीं ले गया था। वह कभी-कभार ही बम्बई से आता और कुछ दिन ठहर कर वापस चला जाता। और जब वह साथ चलने के लिये कहती, वह सदैव यह कह कर टाल देता कि अगले महीने अवश्य ले जाऊंगा। और दस वर्ष तक वह अगला महीना नहीं आया।

ज्वाला ने अपनी जान पर सब कुछ सहा और उफ तक न की। उसने लोगों के ताने सुने, अपनी कठोर सास और नकचढ़ी ननदों के कोसने सहे, अपनी रातें रोते-छटपटाते, बेकारी में काट दीं। किन्तु वह अपने पति के प्रति वफादार रही। और ऐसे दस

वर्ष उसके यौवन का समग्र रस साथ लेकर व्यतीत हो गये।

आखिर एक दिन उसने सोचा कि उसे स्वयं कुछ करना चाहिए। क्या हुआ यदि रमेश उसे अपने साथ नहीं ले जाता, वह स्वयं उसके पास जा सकती है। और फिर एक दिन सबके मना करने पर भी उसने अपने पति को तार दे दिया और फिर एक दिन बम्बई रवाना हो गई।

स्टेशन पर जब उसका पति उसे लेने आया, तो उसकी त्यौरियां चढ़ी हुई थीं। स्टेशन से बाहर आये। किन्तु न तो मार्ग में और न ही घर पहुंच कर उसने ज्वाला से कोई बात की। बस, एक बार इतना पूछ लिया, कि मार्ग में कोई कष्ट तो नहीं हुआ? इतना तो अपरिचित से भी पूछ लिया जाता है।

आठ दिन घर पर व्यतीत करने के पश्चात ज्वाला को अनुभव हुआ कि उस ने बम्बई आ कर गलती की है। आठ दिनों में रमेश केवल दो रातें घर आया था। आखिर जब आठवें दिन दोनों का आपस में झगड़ा हुआ, तो रमेश ने उसे साफ-साफ कह दिया—"मैंने एक एंग्लो-इण्डियन लड़की से विवाह कर लिया है। मैं उसे बहुत चाहता हूँ और वह भी मुझे बहुत चाहती है। तुम मुझे बिल्कुल पसंद नहीं हो। यह तुम्हारा पीला-पीला चेहरा, दुबला-पतला शरीर। बस तुम मुझे प्रसन्न नहीं कर सकती। मैं कुछ और चाहता हूं। दरअसल हिन्दुस्तानी स्त्री पुरुष को प्रसन्न रखना जानती ही नहीं। उसे यह जांचने की बुद्धि ही नहीं होती कि पुरुष किस समय क्या चाहता है…।"

और यह सब बकता-झकता रमेश फिर घर से चला गया।

अब की बार एक आंसु भी ज्वाला की आंखों में नहीं आया—यद्यपि वह इस से पहले रमेशके दिये जरा-जरा से दुःख घण्टों पड़ी रोया करती थी। और फिर यह तो बहुत बड़ा दुःख दिया था उस ने। तो भी अपनी विवशता पर रोने की बजाये इस बार ज्वाला के तन-बदन में आग-सी लग गई थी। वह क्रोध से पागल हो उठी। दस वर्ष का पुराना पातिव्रत्य और प्रेम का महल पल भर में टूट कर चकना चूर हो गया।

और उस रात रमेश घर नहीं आया। वह बिस्तर पर पड़ी ताव खाती रही। सारा संसार सो रहा था। केवल एक ज्वाला जाग रही थी और जाग रही थी वह अन्धकार पूर्ण अकेली रात।

अगले दिन रमेश दुपहर को घर आया। किन्तु आज वह अकेला नहीं आया था; उसकी वह मेम उसके साथ थी। रमेश की इच्छा के अनुसार ज्वाला अत्यन्त स्नेह से उस मेम से मिली और जितनी देर वह उसके घर रही, ज्वाला उसकी आवभगत में लगी रही। घण्टे डेढ़ घण्टे के बाद जब वह विदा हुई और रमेश उसे छोड़ने चला गया, तो ज्वाला उठी, अपना आवश्यक सामान साथ लिया और चल खड़ी हुई।

और अब वह इस गाड़ी में बैठा था, जो धरती के वक्ष को चीरती हुई भागी जा रही थी। किन्तु ज्वाला के विचारों का वेग उस गाड़ी से भी तेज़ था। और फिर इस गाड़ी की तो एक मंज़िल थी, किन्तु ज्वाला की यात्रा जीवन की भाँति गतिमय थी, जिसकी कहीं मंज़िल न थी। ज्वाला ने जीवन का रहस्य पा लिया था और

अब वह इस विस्तृत संसार में अपना स्थान आप बनाने और एक स्वतन्त्र और सम्मानित जीवन व्यतीत करने निकल पड़ी थी।

और फिर एक नये उत्साह और नये उल्लास के साथ ज्वाला ने अपना सिर खिड़की के भीतर कर लिया। अमावस की काली रात बीत गई थी, अन्धकार छंट गया था और सूर्य्य की पहली किरण उस की आँखों में झांक रही थी।



[१३]

झकोला, चारपाई

(श्री वृंदावनलाल वर्मा)

रामदयाल—कविता में उनका उपनाम 'दयालु' था—चारपाई पर जमे हुए उस दिन और उस समय भी लिखते ही चले जा रहे थे।

उनकी श्रीमती जी ने आकर विचारधारा को खण्डित कर दिया। आव देखा न ताव, बोलीं, "घसीटे जाओ कलम और करे जाओ स्याही-कागज़ खतम। कल के लिए अनाज नहीं है और बच्चे को तो दो दिन से दूध ही नहीं मिला।"

"ठहरो भी," रामदयाल ने विचारधारा को अखंडित बनाए रखने की धुन में कहा, "यह कल्पना यदि दिमाग से खिसक गई तो फिर हाथ नहीं लगने की।"

रामदयाल ने हठपूर्वक कलम का प्रयोग करने का प्रयास किया, परन्तु कल्पना ने विद्रोह कर दिया और न जाने कहाँ खिसक गई।

रामदयाल ने झल्लाहट को दबा कर कलम को हाथ में थामा और बरबस मुस्कराते हुए पूछा, "क्या एक दिन आगे के लिए भी नहीं है ?"

उत्तर मिला, "बिलकुल नहीं, एक दाना भी नहीं।"

माथे पर कलम को फेरते हुए लेखक ने श्रीमती जी से कहा, "चिन्ता मत करो, मेरी कहानियां और कविताओं का संग्रह छप चुका है, रुपया आता ही होगा। प्रकाशक की चिट्ठी आ गई है।"

"कई दिन से तो कह रहे हो इस बात को।"

"आज निश्चयात्मक कहता हूं। चिट्ठी आ गई है। अब ज़रा लिखूंगा, ऐसा कि जिससे लक्ष्मी जी का माथा खुजलाने लगे !"

रामदयाल ने अपनी पत्नी को हंसाने के लिए अपनी कला का करिश्मा पेश किया था, परन्तु वैसा कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह मुंह बनाए ओठ बिरबिराती हुई चली गई, मानो कहना चाहती हो—भाड़ में जाय तुम्हारा साहित्य और चूल्हे में पड़ें लक्ष्मी जी !

रामदयाल ने फिर ध्यान साधा, और कलम चलाने लगे।

दिन भर के थके-मांदे और दूसरे दिन की चिन्ता को कल्पना द्वारा दबा देने वाले रामदयाल ने अपनी चारपाई पर शरीर को अंगड़ाइयों के साथ फैलाया। कल्पना की टक्कर ने नींद को कुछ समय तक दूर रखा। मन में एक विचार जागा—'यदि सरकार लेखकों के आमोद-प्रमोद के लिए किसी वन-वेष्टित, सजल, ऊंचे

स्थान पर निवास इत्यादि बनवा दे, जैसे उसने अपने लिए शिमला नैनीताल, पचमढ़ी, दार्जिलिंग इत्यादि में बनवा रखे हैं, तो बड़ा ही अच्छा हो—और कुछ रुपये का भी प्रबन्ध कर दे !' नींद तो कल्पना के भय के मारे आ ही नहीं रही थी, उचट कर बैठ गए। चारपाई झकोला थी; उस में रामदयाल लगभग तीन-चौथाई दिखलाई पड़ रहे थे। पत्नी को इस आकस्मिक प्रयोग पर कुछ शंका हुई।

पूछा, "क्या है जी ? क्या बात है ?"

प्रसन्न स्वर में रामदयाल ने उत्तर दिया, "एक बड़ी बढ़िया सूझ मन में उठी है। उस पर कल ही कुछ लिखूंगा।"

पत्नी के मुंह से निकला, "ओह !"

रामदयाल ने अपनी कल्पना और योजना प्रकट की। पत्नी को हंसी आई—उसको, जिसने दिन में मुस्कराने से भी नाहीं कर दी थी। रामदयाल ने अपनी बात को और आगे नहीं बढ़ाया। मन को थोड़ा-सा मार कर उसकी हंसी पी गए और फिर लेट गये। थोड़ी देर में नींद आ गई।

सुन्दर सुहावना पहाड़, ऊंचा; उसके पास की श्रेणियाँ और भी ऊंची होती चली गई थीं। दूरी पर नीची पर्वत-मालाएं, जिन से बादल मचल-मचल कर टकरा-टकरा जाते थे। सुनहली रवि-रश्मियाँ उद्यान के रंग-बिरंगे फूलों के साथ अठखेलियाँ कर रही थीं। पवन-विडोलित वृक्षों की हरी-भरी पत्तियां प्रकाश और छाया के निरंतर क्रम में प्रकृति को प्राण दे रही थीं। रामदयाल ने देखा, वसन्त का कोई प्रसिद्ध या अप्रसिद्ध सखा यहां सदा बना

रहता है। कल्पना ने कविता को हिलोड़ दी और रामदयाल ने मुखरित होने की ठानी। परन्तु, जैसे हर पल और प्रत्येक पग पर टोका जाना भाग्य में लिखा कर चले हों, किसी ने पुकारा, "दयालु जी! दयालुजी!!"

मुड़ कर देखा तो 'सुन्दर-निवास' से एक मित्र पुस्तक हाथ में लिए चले आ रहे हैं।

"दयालु जी, यह पुस्तक छपकर आ गई। एक बढ़िया आलोचना भी साथ में है," मित्र बोले।

पुस्तक पर लिखा था 'कहानी-संग्रह।"

पुस्तक को हाथ में लेकर 'दयालु जी' ने कहा, "मेरा कहानी-संग्रह भी छप कर आज ही आया है। तुम को दिखला नहीं पाया। कविता-संग्रह भी कल आता होगा, और रुपये भी।"

"अजी रुपए आवें या न आवें। यहां रंग-बिरंगे फूल हैं, और भी ऐसा कुछ है, जिससे फिर किसी पदार्थ की कमी नहीं रहती। कुछ फूल तोड़ कर चलो घूमें।" मित्र ने प्रस्ताव किया।

दयालु जी ने अस्वीकृत किया, "इन सुन्दर फूलों को तोड़ कर, फिर सूंघ कर, फिर धराशायी कर दोगे न? प्रकृति के ये वरदान कविता-कामनी के शृंगार हैं। इनको तोड़ना नहीं चाहिए। वह तुम्हारा 'ऐसा कुछ है यहाँ कि जिससे किसी पदार्थ की कमी नहीं रहती,' कहां है? वहीं चलो।"

वे दोनों आगे बढ़ गये। देखा कि एक पेड़ पर अशर्फियां, रुपये, नोट लगे हुए हैं।

"यह है वह कुछ ऐसा, जो मैंने कहा था," मित्र ने बताया।

उसको देखते ही वे दोनों बेतहाशा दौड़ पड़े। परन्तु केवल वे ही नहीं दौड़े। उनको एक ओर से एक भीड़ और भी आती हुई दिखलाई पड़ी, जो इसी पेड़ की ओर दौड़ी आ रही थी। उस भीड़ के हाथों में भी पुस्तकें थीं।

दयालु जी के मुंह से निकला, "इतनी बड़ी भीड़! इस पेड़की छाल भी नहीं बचेगी!"

वह सबसे पहले पहुंचने के लिये आगे बढ़े। एक ठोकर खाई और हाथ के बल गिर पड़े।

❀ ❀ ❀

आंख खुल पड़ी। झकोला चारपाई की पाटी पर हाथ गिरा हुआ रखा था रामदयाल ने इधर उधर देखा। वहां न सरकार का बनवाया हुआ कोई निवास-स्थान था और न कोई उद्यान। थी केवल झकोल चारपाई! लम्बी 'हूँ' करके रामदयाल ने आंखें मूद लीं।

—:०:—

सतलुज प्रिंटिंग प्रेस, घण्टा घर लुधियाना में ज्ञानी गुरुदित्त सिंहजी प्रिंटर के प्रबन्ध में छपवा कर सरदार जीवन सिंह जी एम. ए. मालिक लाहौर बुक शाप, घण्टा घर लुधियाना से प्रकाशित किया।